



२८९

चन्द्रिका

हिन्दी मासिक

सितम्बर ८९

चन्द्रिका - हिन्दी मासिक



गणेश जन्मोत्सव विशेषांक

इस अंक में विशेष

गणेश पूजन की महत्ता

अभिशाप्त चन्द्र

धर्मयुद्ध-

क्षेत्र का चुनाव कैसे हुआ ?

दरिद्र की सेवा

यज्ञ से लाभ

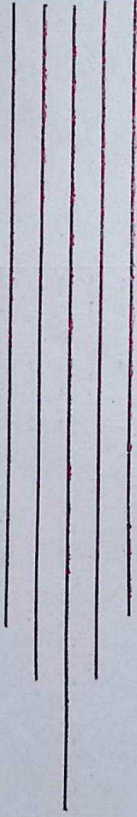
आयुर्वेद और रत्न

वर्ष २

अंक ६

मूल्य ६ रुपये

हार्दिक शुभकामनाएं



ईश्वर स्टील्स प्रा० लि०

(स्टील रोलिंग मिल्स)

मेरठ रोड, मुजफ्फरनगर

राउन्ड बार्स, एंगलस तथा स्क्वायर्स
के सुविरल्यात एवं अनुभवी निर्माता

फोन : कार्यालय : ६६४८, ६७३२

सम्पादकीय

श्री गणेशाय नमः श्री महालक्ष्म्ये नमः



प्रिय पाठकवृन्द पत्रिका का गणेश जन्मोत्सव विशेषांक आपके हाथ में है। यह अंक विगत अंकों में कैसा रहा, सूचित करें।

पत्रिका का लक्ष्य ज्योतिष के प्रति अविश्वास को मिटाकर अपने देवताओं के मुख से निकले प्रयोगों व ऋषियों के अनुभूत यहाँ तक कि समपर्कीय परिवारों के अनुभूत प्रयोगों द्वारा विश्वास व भारतीय संस्कृति की मूल निधि जागृत रखने का संकल्प है। ज्योतिष का सही ज्ञान प्रत्येक व्यवसायी, विद्यार्थी, राजा, प्रजा को होना जीवन मार्ग-दर्शन हेतु अति आवश्यक है।

हमारे इस वैज्ञानिक युग में आज भी ज्योतिष शास्त्र, यन्त्रशक्ति, मन्त्रशक्ति, तन्त्रशक्ति का कुछ मन्द बुद्धि लोग उक्त विषयों को निराधर, असत्य या पाखण्ड बताकर उपहास करते हैं। खेद है ... और कुछ ऐसे लोग भी हैं जो उक्त विषयों को गुप्त (आन्तरिक) रूप से मानते हैं, स्वीकारते हैं, उपयोग करते हैं लेकिन सामूहिक तौर पर वह समाज भी मौन साध लेता है जब उक्त विषय का उपहास हो रहा है।

आज का मानव वेदों की भाषाओं को छोड़कर अन्य भाषाओं का उपासक है। आध्यात्मिक स्वाध्याय मनोबल व आत्मबल की वृद्धि करता है। फिर भी पाठक गण यही चाहते हैं कि पत्रिका की भाषा में कुछ परिवर्तन किया जाए।

पाठकों की इच्छा को ध्यान में रखते हुए भाषा को सरलता देते हुए मनोवैज्ञानिक स्तर पर छूने वाली रचनाएँ निरन्तर आपको मिलती रहेंगी। इस प्रयास को क्रियान्वित करने हेतु पत्रिका को अपने सुभाव भेजकर कृतार्थ करें। आपके सुभाव हमारे मार्गदर्शक हैं—उन्हीं के अनुसार पत्रिका का प्रारूप बनेगा।

आपका अपना
राज भारद्वाज

॥ महा सरस्वत्यै नमः ॥

संचालक एवं मुख्य सम्पादक : राज भारद्वाज “ज्योतिर्विद्”

संरक्षक : श्री चन्द्रभान खन्ना
(रेनबो विहार)
श्री हुक्मचन्द अग्रवाल
(निधि रोलिंग मिल्स)
श्री रमेश कुमार गुप्ता
(केमको)

सम्पादक : सतीश शर्मा
नरेश शर्मा

सह-सम्पादक : रीता भारद्वाज
रेनु शर्मा

विज्ञापन व्यवस्थापक : हंस कुमार गुप्ता

सहयोगी : श्री जनेश्वर दयाल ‘जैनोजी’
श्री सतीश गोयल
श्री हरीश छावड़ा
श्री सुरेन्द्र कुमार गोयल-मोगेवाले
श्री एम० पी० डागा
श्री दीपक भूषण
श्री चितरंजन स्वरूप बंसल
श्री आदेश जैन
श्री नरेन्द्र कुमार

ज्योतिष चन्द्रिका कार्यालय (१) 523, दक्षिणी सिविल लाईन्स,
मुजफ्फरनगर-251002 (उ० प्र०)
दूरभाष-8435

(२) 24-ए, पाकेट-ए, मयूर बिहार
फेस-II, देहली-110091

(३) सी-4-144, लारेन्स रोड,
नई दिल्ली

दूरभाष - 7217920

लेख

नवम गणेश महोत्सव

卐 विघ्न विनाशक महायज्ञ 卐

(4 सितम्बर 1989 से 13 सितम्बर 1989 तक)

यज्ञ से लाभ

ॐ वक्रतुण्ड महाकाय सूर्य कोटि सम प्रभम् ।

अविघ्नं कुरु मे देवः सर्व कार्येषु सर्वदाः ॥

सत्संग पूजा एवं यज्ञ में रहने पर भी कुछ सज्जन (जिन्हें परमात्मा के प्रति सच्चा प्रेम नहीं मन स्थिर नहीं, विश्वास नहीं) का कहना है कि हवन करने से कोई लाभ नहीं । हवन करने में घी, मिठाई, अन्न व औषधी डालकर जलाने से क्या लाभ ? न तो कहीं देवी-देवता ही हैं और न हवन में जलाये गये पदार्थों को कोई प्राप्त ही करता है । अर्थात् हवन में जलाये गये पदार्थ किसी को प्राप्त नहीं होते । अग्नि में पदार्थों को जलाकर केवल राख बनाना है । इन घी, अन्न आदि पदार्थों को जलाने की बजाय यदि किसी प्राणी को खिलाया जाय तो अच्छा हो । जिससे उन प्राणीयों की भूख मिटकर उन्हें लाभ हो जाय । इस प्रकार वे लोग हवन करने को वृथा मानते हैं । ऐसा मानकर वे लोग कभी भी लाभ प्राप्त नहीं कर सकते हैं । ये लोग हवन के बारे में न तो कुछ जानते हैं और पक्षपाती होकर वे हवन के प्रति कुछ करने का प्रयत्न भी नहीं करते । उन्हें तो केवल हवन करने का विरोध ही करना है और वे हवन करने का विरोध ही करते रहते हैं । हवन करना चाहे अच्छी बात ही क्यों न हो या हवन करने से चाहे लाभ ही क्यों न हो । उन्हें तो केवल विरोध करके ही सिद्ध करना है कि हवन से कोई लाभ नहीं और ऐसा ही वे स्वयं मानकर कभी भी यज्ञ नहीं करते, यदि करते हैं तो उसका लाभ भी नहीं उठा सकते ।

परन्तु उपरोक्त सभी बातों को पढ़कर विचार करने से मालूम होता है कि पूजा, यज्ञ हवन करने से अनेक लाभ हैं । पूजा करने से मन में शुभ भावों के परमाणु बनते हैं और वे परमाणु अन्तरिक्ष में जाकर रहने लगते हैं । जिन्हें अन्तरिक्षवासी सूक्ष्म शरीर की आत्मायें, देवी, देवता, ऋषि, मुनि, योगी, पितर आदि प्राप्त कर प्रजन्म होकर मानव को सुख, शान्ति व शुभ बुद्धि प्रदान करते हैं । जिससे मानव शुभ कार्य कर आत्मा को बलवान बनाकर कल्याण को प्राप्त होता है । इस प्रकार पूजा करने से निम्नलिखित लाभ होते हैं, जिन्हें मैं सूक्ष्म रूप में बता देना चाहता हूँ-

1. पूजा-पाठ व हवन करने से आत्मा बलवान व निर्भय बन जाती है । जिससे सब कार्य सफल हो जाते हैं ।

ज्योतिष चन्द्रिका : सितम्बर 89

२. पूजा-पाठ व हवन करने से मन व औषधियों से शुभ परमाणु बनते हैं । जिससे वायु शुद्ध हो जाती है, वायु मंडल में विषाणु नहीं रहते । शुद्ध वायु श्वास के द्वारा फेफड़ों में जाकर रक्त को शुद्ध बनाने में सहायक है जिससे मनुष्य को कभी हृदय रोग नहीं होता है ।
३. पूजा व स्तुति करने से मन में शुभ परमाणु बनते हैं । वे सभी परमाणु अन्तरिक्ष में चले जाते हैं जिन्हें अन्तरिक्ष में देवी-देवता, योगी, सिद्ध, मुनि, प्राप्त कर मनुष्य को आशीर्वाद देते हैं, जिससे मानव का कल्याण होता है एवम् इच्छित कामनायें पूर्ण होती हैं ।
४. हवन से शुभ परमाणु उत्पन्न होते हैं । जिससे रोगों का नाश होता है क्योंकि शुभ परमाणु रोगों के परमाणुओं से मिलकर तथा क्रिया करके उनका अस्तित्व नष्ट कर देते हैं ।
५. पूजा, हवन या कर्म करने से मन के विचारों की भावना से परमाणु उत्पन्न होते हैं । जो मुख से, मस्तिष्क की नाड़ियों की तरंगों द्वारा अन्तरिक्ष में जाकर रहने लगते हैं । जो अन्तरिक्ष में विभिन्न वस्तुओं के परमाणुओं को उत्पन्न कर देते हैं । जिन्हें मानव प्राणायाम के द्वारा जान लेता है ।
६. हवन करने से अन्न एवम् औषधियों के परमाणु बनते हैं । जो अन्तरिक्ष में रहने लगते हैं । जिससे विभिन्न वस्तुएँ उत्पन्न हो जाती हैं । जिन्हें यज्ञ वैज्ञानिक जानकर मन्त्रों को बनाकर उन परमाणुओं से अपने कार्य सफल बनाकर सुखी जीवन बनाते हैं ।
७. हवन व पूजन करने से मन की भावना से उत्पन्न परमाणु व पूजा से मन की भावना से उत्पन्न सब परमाणु अन्तरिक्ष में जाकर रहने लगते हैं । वहाँ सूक्ष्म शरीर को आत्मायें देवी-देवता, ऋषि, मुनि, योगी आदि इन परमाणुओं में से कुछ को ग्रहण करके अपना भोजन प्राप्त करते हैं । जिससे वे अपने भक्तों पर प्रसन्न होकर फिर अपने भक्तों के कार्यों को दूसरे मनुष्यों से अपने परमाणुओं के प्रभाव को सफल बना देते हैं । इन अन्तरिक्ष में रहने वाली सूक्ष्म शरीरों की आत्माओं को प्राणायाम से मानव जान लेता है ।
८. हवन करने से वनस्पतियों में जो अन्न, जल, तेल व अन्य खनिज लवण होते हैं उनके भी परमाणु अन्तरिक्ष में जाकर रहने लगते हैं । और वे परमाणु सूर्य की किरणों के द्वारा फिर दोबारा अन्न, जल, गैस, तेल व खनिज पदार्थ आदि उत्पन्न करने लगते हैं ।
९. हवन के परमाणुओं से विज्ञान उत्पन्न होता है । उस विज्ञान की वस्तुओं का स्वरूप (माडल) भी उन परमाणुओं के साथ-साथ अन्तरिक्ष में रहता है । जो वैज्ञानिक की बुद्धि में आकर वैज्ञानिक द्वारा नाना वस्तुओं की रचना करके एक सुन्दर वस्तु को उत्पन्न कर देता है -

१०. मानव के अनेक जन्मों के शुभ व अशुभ कर्मों के विचारों के जो परमाणु अन्तरिक्ष में फिरते रहते हैं, उनमें से अशुभ व पाप कर्मों के परमाणुओं को नष्ट कर देते हैं जिससे पाप समाप्त होकर मानव धर्मात्मा व ज्ञानी बन जाता है ।
११. हवन की तरंगों व किरणों से मानव की बुद्धि शुद्ध व तीव्र हो जाती है और कुछ तरंगों द्वारा अन्तरिक्ष से शुद्ध ज्ञान मानव बुद्धि में आने लगता है जिनसे त्रिकालदर्शी, ज्ञानी, विज्ञानी व योगी बन जाता है ।
१२. हवन व पूजन के परमाणुओं द्वारा वर्षा होती है जिससे वनस्पति, अन्न औषधि, विद्युत्, खनिज, पदार्थ व नाना वस्तुएँ उत्पन्न हो जाती हैं । जिससे मानव के कार्य सफल होकर जीवन सुखी हो जाता है ।
१३. हवन व पूजा करके प्राणायाम के द्वारा ध्यान करने से ईश्वर को व प्रकृति को जाना जाता है क्योंकि ध्यान योग के द्वारा मानव के समक्ष कोई ऐसा पदार्थ व वस्तु आदि नहीं रह जाती जिसे वह नहीं जानता है ।
१४. पूजा के द्वारा प्राणायाम से मानव सूक्ष्म शरीर को जान लेता है । और सूक्ष्म शरीर को धारण करके सूर्य, चन्द्रमा व शनि आदि सब लोकों में भ्रमण करके सब वस्तुओं को भी जान लेता है ।
१५. हवन व पूजा करने से उत्पन्न परमाणुओं पर हवन कर्त्ता का चित्र आरूढ़ होकर स्वर्गलोक में रमण करने लगता है और शरीर त्यागने के पश्चात् धर्मात्मा उस परमाणु पर आरूढ़ होकर स्वर्ग में या अमर बनकर सूक्ष्म शरीर से अन्तरिक्ष में इच्छानुसार फिरने लगता है तथा जब वह जन्म लेने की इच्छा करता है तो इच्छानुसार जन्म ले लेता है । उसकी इच्छा के अनुसार ही चराचर जगत के कार्य होने लगते हैं ।
१६. प्राणायाम के अभ्यास से मानव स्थूल शरीर से बैठ-बैठा सूक्ष्म शरीर को प्राप्त करके स्थूल शरीर में ब्रह्म रन्ध्र की नाड़ियों द्वारा सारे संसार में भ्रमण करके संसार की सभी वस्तुओं को देख लेता है ।
१७. यज्ञ करने से मानव की शुभ भावनाओं के परमाणुओं से पाप भस्म हो जाते हैं और वह धर्मात्मा बन जाता है । हवन, पूजा, पाठ व ध्यान करने से अनेक लाभ होते हैं । इसे विचार कर पूजा, पाठ, हवन, तर्पण, यज्ञ करना प्रत्येक मानव का कर्त्तव्य है । इस कर्त्तव्य को हमारे पूर्वज करते आ रहे हैं । हम कर रहे हैं तथा भविष्य में भी करना चाहिए ।

१८. पूजा, पाठ व हवन करने से वायु व वातावरण शुद्ध हो जाता है। वायु से प्राण, प्राण से शरीर, शरीर से बुद्धि, बुद्धि से कर्म, कर्म से समाज, समाज से राष्ट्र और राष्ट्र से विश्व शुद्ध हो जाता है तथा विश्व शान्ति के ऊपर नियंत्रण पाना सम्भव हो जाता है। जिससे मानव का सुखपूर्वक जीवन सफल होता है।

१९. यज्ञ चिकित्सा में हवन के पास बैठने मात्र से ही अनेक मानसिक अविकसित वच्चों का मानसिक विकास होता है।

२०. हवन के प्रभाव से रक्त में शर्करा की मात्रा कम हो जाती है।

२१. यज्ञ के घुएँ से सरदर्द, जुकाम, जीर्ण ज्वर, त्वचा रोग, जोड़ों का दर्द दूर हो जाता है।

यज्ञों के अनेक प्रकार हैं। बम्बई से प्रकाशित अंग्रेजी मासिक 'मिरर' के जुलाई १९८३ के अंक में पृष्ठ ७५ पर एक समाचार प्रकाशित हुआ कि एक अमरीकी मानस-रोग विशेषज्ञ पूना विश्वविद्यालय में यज्ञ-चिकित्सा पर अनुसंधान कर रहे हैं। जिसमें उन्होंने अनेक असाध्य रोगों पर सफलता प्राप्त की। यज्ञ विज्ञान द्वारा अनुभूत प्रयोग कर हम आपको आमंत्रित करते हैं—इस प्रकार श्रद्धाविश्वास पूर्वक यज्ञ करने से प्रभू प्रसन्न होकर इच्छित कार्यों में सफलता प्रदान करते हैं।

निवेदक :

चन्द्रभान खन्ना

एवं समस्त मित्रगण व जनपदवासी

यज्ञस्थल :

दुर्गा मन्दिर, नुमाइश कैम्प, गणेशपुरी, मुजफ्फरनगर

गरुड उत्सव आयोजक :

राज भारद्वाज ज्योतिर्विद

मुख्य सम्पादक : ज्योतिष चन्द्रिका

५२३, दक्षिणी सिविल लाईन, मुजफ्फरनगर



ज्योतिष चन्द्रिका : सितम्बर ८९/

गणेश पूजन की महत्ता

(अनन्तश्रीविभूषित तमिलनाडुक्षेत्रस्थ श्रीकाञ्ची-कामकोटिपीठारूढ़ जगद्गुरु शंकराचार्य कनिष्ठस्वामी जयेन्द्रसरस्वती (पुदु पेरियवाल) जी महाराज)

अनादिकाल से ही भारत सदैव आध्यात्मिक शक्ति-सम्पन्न देश रहा है। अन्य देशों से भारत के वैशिष्ट्य का यही कारण है। आध्यात्मिक शक्ति-सम्पत्ति के लिए प्राचीन ऋषियों ने अनेक साधन आविष्कृत किये हैं। उनमें से निर्दिष्ट पूर्वकालों में निर्दिष्ट देवता का पूजन और आराधन एक है। यह पूजा और आराधना व्यष्टि और समष्टि के भेद से दो प्रकार की होती है। हमारे पूर्वजों का यह विचार नहीं था कि एक व्यक्ति ही पूर्वोक्त आध्यात्मिक शक्ति से सम्पन्न हो, अपितु वे उस शक्ति का संचार समष्टि में भी चाहते थे। बिना शक्ति के चाहे ऋषि हों या देव, कोई भी अपने मनोरथों को पूर्ण करने में समर्थ नहीं होते। आचार्य शंकर ने कहा है कि 'शिवः शक्त्या युक्तो यदि भवति शक्तः प्रभवितुम्।' कार्य की समान सिद्धि के लिए अन्य कारणों के साथ 'प्रतिबन्धक-संशर्गाभाव' को भी शास्त्रकारों ने एक कारण माना है। यह प्रतिबन्धक अदृष्टरूप है अर्थात् यह मानव के दृष्टिगोचर नहीं होता। जो वस्तु दृष्टिपथ में नहीं आती; कार्य-सिद्धि के न होने से उसका अनुमान होता है। मानव अन्य सभी कारणों के रहते हुए भी कार्य के सम्पन्न न होने से प्रतिबन्धक या विघ्न का अनुमान करता है। वह विघ्न या प्रतिबन्धक तबतक नहीं हट सकता, जबतक प्रबल अदृष्ट-शक्ति का अवलम्बन नहीं लिया जाय। विघ्न-बाधाओं के दूर करने के लिए ही विघ्नेश्वर की शरण ली जाती है। अतएव छोटे-मोटे—सभी कार्यों के आरम्भ में 'सुमुख-श्चेकदन्तश्च' आदि द्वादश नामों का स्मरण करके कार्यारम्भ करते हैं। यों तो नामस्मरण का माहात्म्य छिपा नहीं है, फिर भी भागवत आदि ग्रन्थों में नाम के स्मरण का विशेष माहात्म्य प्रतिपादित है। इन द्वादश नामों के कीर्तन की फलश्रुति इस प्रकार है—

द्वादशैतानि नामानि यः पठेच्छृणुयादपि ॥

विद्यारम्भे विवाहे च प्रवेशे निगमे तथा ।

संग्रामे संकटे चैव विघ्नसत्यं न जायते ॥

केवल नाम-स्मरण या संकीर्तनमात्र से संतुष्ट न रहकर हमारे पूर्वजों ने एक पूजाक्रम का भी प्रवर्तन किया है। इस क्रम के प्रवर्तन में वैदिक मन्त्र, पौराणिक विधि एवं तन्त्र के कुछ अंशों का भी अवलम्बन लिया गया है। इसी से श्रौत, स्मार्त, पौराणिक या तान्त्रिक, जो भी कर्म हों, उनके प्रारम्भ में गणेश जी की ही आराधना होती है और इस आराधना में परस्पर कुछ वैलक्षण्य

भी देखा जाता है। यह तो अन्य कर्मों के आरम्भ करने की बात है, किन्तु जब भाद्रपद-शुक्ल-चतुर्थी का पर्व आता है, तब उसके प्रारम्भ में भी विघ्नहरणार्थ विघ्नेश-पूजा की जाती है। इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि एक अंग-पूजन है और एक प्रधान-पूजन। श्री गणेश जी का अंग के रूप में जो पूजन है, वह विघ्नहरण के निमित्त है और प्रधान पूजन सभी मनोरथों की सिद्धि के निमित्त है। एक ही देवता का कभी अंग और कभी प्रधानता के रूप से पूजित होना अनुचित नहीं है। पारमार्थिक दृष्टि से देवताओं में उच्च-नीच भाव नहीं है, लेकिन व्यावहारिक दृष्टि में यह अपरिहार्य है।

भगवत्पाद श्रीशंकराचार्यजी-जैसी महान् आत्मा, जिन्होंने आसेतु-हिमाचल भारत में भेद-भाव के बिना अद्वैत-सिद्धान्त की प्रतिष्ठा की, वे ही भगवत्पाद 'षण्मतप्रतिष्ठापनाचार्य' भी कहे जाते हैं। षण्मत हैं—गाणपत्य-सौर-शैव-वैष्णव-शाक्त और कौमार। इन मतों में कोई किसी मत का भी हो, उसे अन्य मतों का भी आदर करना पड़ता है। इससे अद्वैत-भाव की कोई हानि नहीं होती।

देश और प्रान्त के भेद से पूजन का भेद उपलब्ध होने पर भी भारत भर में भाद्र-शुक्ल-चतुर्थी एवं माघ-कृष्ण चतुर्थी के दिन श्रीगणेशोत्सव विशेषरूप से प्रचलित है। श्रीविद्याक्रम में गणेश-पूजन को 'महागणपति-सपर्या' कहते हैं।

'महागणपति' शब्द यहाँ एक विशेष अभिप्राय से लिया जाता है। महागणपति मनु में २८ अक्षर होते हैं। संख्याशास्त्र के अनुसार 'महागणपति' शब्द भी २८ संख्या का अवलोकक है। कई देवतावाचक शब्द इस प्रकार बने हुए हैं कि शब्द से प्रोक्षित संख्या से तत्तदेता के मनु के अक्षरों की संख्या मिल जाती है। यह गम्भीर विषय है, जो गुरु-परम्परा से ही गम्य है।

आज हम चमत्कारों को देखकर नमस्कार करते हैं, किन्तु नमस्कार करने से चमत्कार उत्पन्न होता है, यह बात हम भूल गये हैं। चमत्कार ही अध्यात्मिक शक्ति है। यह देवताओं के नमस्कार और पूजन से ही सिद्ध होता है। अच्छे फल को प्राप्ति के लिए अच्छे कर्मों का अनुष्ठान न्याय-संगत है। यह कर्मभूमि है। बिना अच्छे कर्म के किये फलवात्र की कामना उचित नहीं। विशेषतः देवता-प्रसाद के लिये यथोचित कर्म करना पड़ता है। संसार में रहते हुए संसार आवश्यक है। देश का गौरव अच्छे कर्म और अच्छे आचरण करनेवालों पर अवलम्बित है। बड़ी-बड़ी इमारतों और अस्त्र-शस्त्र की अभिवृद्धि से देश का गौरव नहीं मापा जा सकता। सदाचार-सम्पत्ति, सत्कर्मनुष्ठान, सभी में सुदृढ़-भाव या भ्रातृ-भाव आदि से ही देश का गौरव है। गणेश-चतुर्थी जैसे महापर्व पर यदि हम सामूहिक रूप से उत्सव मनायेंगे और अपनी भक्ति-श्रद्धांजलि को भगवान के अर्पण करेंगे तो देश का आज का दुर्भिक्ष और उसकी अशान्ति सुनिश्चित रूप से दूर हो जायगी। हम सिद्धिविनायक महागणपति से प्रार्थना करते हैं कि वे प्राणिमात्र को सुखी बनायें और उपस्थित अशान्ति को दूर करें तथा मंगलमूर्ति भगवान श्रीगणेश प्रसन्न होकर सभी का कल्याण करें।

× × ×

अभिषप्त चन्द्र

एक समय गणेश जी के द्वारा चन्द्रमा को शाप प्राप्त हुआ था । गणेश पुराण की वह कथा संक्षेप में इस प्रकार है—

एक बार की बात है, कैलाश के शिव-सदन में लोक-पितामह ब्रह्मा कर्पूरगौर शिव के समीप बैठे थे । उसी समय वहाँ देवर्षि नारद पहुँचे । उनके पास एक अतिशय सुन्दर और स्वादिष्ट अपूर्व फल था । उक्त फल देवर्षि ने करुणामय उमानाथ के कर-कमलों में अर्पित कर दिया ।

उक्त अद्भुत और सुन्दर फल पिता के हाथों में देखकर गरुड और कुमार दोनों बालक उसे आग्रहपूर्वक माँगने लगे । तब शिव ने ब्रह्मा से पूछा—‘ब्रह्मन् ! देवर्षि-प्रदत्त यह अपूर्व फल एक ही है और इसे गणेश एवं कुमार दोनों चाहते हैं, आप बतायें, इसे किसे दूँ ?’

चतुर्मुख ने उत्तर दिया—‘प्रभो ! छोटे होने के कारण इस एकमात्र फल के अधिकारी तो षडानन ही हैं ।’

गंगाधर ने फल कुमार को दे दिया । किन्तु पार्वतीनन्दन गणेश सृष्टिकर्त्ता ब्रह्मा पर कुपित हो गये :

लोक-पितामह ने अपने घर पहुँचकर सृष्टि-रचना का प्रयत्न किया तो गजवक्त्र ने अद्भुत विघ्न उत्पन्न कर दिया । वे अत्यन्त उग्ररूप में विधाता के सम्मुख प्रकट हुए । विघ्नेश्वर के भयानकतम स्वरूप को देखकर विधाता भयभीत होकर काँपने लगे ।

गजानन की विकट मूर्ति एवं ब्रह्मा का भय और कम्प देखकर चन्द्रदेव अपने गणों के साथ हँस पड़े ।

चन्द्रमा को हँसते देख गजमुख को बड़ा क्रोध आया । उन्होंने चन्द्रदेव को तुरन्त शाप दे दिया -- ‘चन्द्र ! अब तुम किसी के देखने योग्य नहीं रह जाओगे और यदि किसी ने तुम्हें देख लिया तो वह पाप का भागी होगा ।’

गजकर्ण वहाँ से चले गये । चन्द्रमा श्रीहत, मलिन एवं दीन होकर अत्यन्त चिन्तापूर्वक मन ही मन कहने लगे -- ‘अणिमादि गुणों से युक्त, जगत्-कारण परमेश्वर के साथ मैंने मुखों

की भाँति दुराचरण कसे किया ? मैं सबके लिए अदर्शनीय, वर्णहीन और अत्यन्त मलिन हो गया । अब मैं पुनः कलाओं से युक्त, सुन्दर, वन्द्य एवं देवताओं के लिए सुखद कैसे हो सकूँगा ?'

सुधाकर के अदर्शन से देवगण भी दुःखित हुए । अग्नि और इन्द्र आदि देवगण देवदेव गजानन के समीप पहुँचकर उनकी भक्तिपूर्वक स्तुति करने लगे ।

देवताओं के स्तवन से प्रसन्न होकर गजमुख ने कहा -- 'देवताओं ! मैं तुम्हारी स्तुति से संतुष्ट हूँ । वर माँगो, मैं उसे अवश्य पूर्ण करूँगा ।

देवता बोले -- प्रभो ! आप चन्द्रमा पर अनुग्रह करें, हमारी यही कामना है ।'

गणेश ने कहा -- 'एक वर्ष, छः मास या तीन मास के लिये चन्द्रमा अदर्शनीय हों या तुम्हें और कुछ अभिष्ट है ?'

प्रभु गजानन की वाणी सुनते ही देवगण उनके चरण-कमलों में दण्डवत् प्रणाम करने लगे ।

'देवताओ ! मैं अपना वचन मिथ्या कैसे कर दूँ ? पर शरणागत का त्याग भी सम्भव नहीं ।' महाप्रभु विकट ने विकट परिस्थिति में देवताओं से कहा -- 'सुमेरु अपना स्थान त्याग दे, सूर्य गिर पड़े, अग्नि शीतल हो जाय और सागर अपनी मर्यादा छोड़ दे, पर मेरा वचन असत्य नहीं हो सकता । तथापि तुमलोग मेरी बात सुनो --

भाद्रशुक्लचतुर्थ्या यो ज्ञानतोऽज्ञानतोऽपि वा ॥

अभिशापी भवेच्चन्द्रदर्शनाद् भृगदुःखभाग ।

'जो जानकर या अनजान में ही भाद्र-शुक्ल-चतुर्थी को चन्द्र का दर्शन करेगा, वह अभिशप्त होगा । उसे अधिक दुःख उठाना पड़ेगा ।'

परमप्रभु द्विरजानन के वचन सुन देवगण अत्यन्त मुदित हुए । उन्होंने पुनः प्रभु-चरणों में प्रणाम किया । तदन्तर वे चन्द्रमा के पास पहुँचे ।

देवताओं ने चन्द्रमा से कहा -- 'चन्द्र ! गजमुख पर हँसकर तुमने अपनी मूर्खता का ही परिचय दिया है । तुमने परम प्रभु का अपराध किया और त्रैलोक्य संकटग्रस्त हो गया । हमलोगों ने त्रैलोक्यनायक परब्रह्मस्वरूप सर्वगुरु गजानन प्रभु को बड़े यत्न से संतुष्ट किया । इस कारण उन दयामय ने तुम्हें वर्ष में केवल एक दिन भाद्र-शुक्ल-चतुर्थी को अदर्शनीय रहने का वचन देकर अपना शाप अत्यन्त सीमित कर दिया । तुम भी उन करुणामय की शरण लो और उनकी कृपा से शुद्ध होकर यश प्राप्त करो ।'

देवेन्द्र ने सुधांशु को गजानन के एकाक्षरी मन्त्र का उपदेश दिया और फिर देवगण वहाँ से चले गये ।

सुधाकर शुद्ध हृदय से परम प्रभु गजमुख की शरण हुए । वे पुण्यतोया जाह्नवी के दक्षिण तट पर उन सर्वसुखदायक प्रभु गजानन का ध्यान करते हुए उनके एकाक्षरी मन्त्र का जप करने लगे । इस प्रकार चन्द्रदेव ने गणेश को संतुष्ट करने के लिए बारह वर्ष तक कठोर तप किया । इससे आदिदेव गजानन प्रसन्न हुए ।

सिन्दूरारुण, रक्तमाल्याम्बरधर, रक्तचन्दनचर्चित, चतुर्भुज, महाकाय, कोटिसूर्याधिक दीप्तिमान देवदेव गजानन चन्द्रमा के सम्मुख प्रकट हो गए । निशानाथ ने परम प्रभु के महान् स्वरूप को देखा तो वे आश्चर्यचकित ही नहीं हुए, भय से कांपने लगे । किन्तु फिर उन्होंने मन ही मन विचार किया -- 'मेरे सम्मुख दयामय आदिदेव गजानन ही मुझे कृतार्थ करने के लिए प्रकट हुए हैं ।' तब वे हाथ जोड़कर गद्गद-कण्ठ से उनकी स्तुति करने लगे--

नमामि देवं द्विरदानं तं यः सर्वविघ्नं हरते जनानाम् ।
धर्मार्थकामास्तनुतेऽखिलानां तस्मै नमो विघ्नविनाशनाय ॥
कृपानिधे ब्रह्ममयाय देव विश्वात्मने विश्वविधानदक्ष ।
विश्वस्य बीजाय जगन्मयाय त्रैलोक्यसंहारकृते नमस्ते ॥
त्रयीमयायाखिलबुद्धिदात्रे बुद्धिप्रदीपाय सुराधिपाय ।
नित्याय सत्याय च नित्यबुद्धे नित्यं निरोहाय नमोऽस्तुनित्यम् ॥

'मैं उन गजानन देव को नमस्कार करता हूँ, जो लोगों के समस्त विघ्नों का अपहरण करते हैं । जो सबके लिए धर्म, अर्थ और काम का विस्तार करते हैं, उन विघ्न-विनाशक गणेश को नमस्कार है । कृपानिधे ! देव !! आप विश्व की रचना करने में कुशल हैं, विश्वरूप तथा ब्रह्ममय हैं । इस विश्व के बीज (आदि कारण) हैं । जगत् आपका स्वरूप है । आप ही तीनों लोकों का संहार करने वाले हैं; आपको नमस्कार है । तीनों वेद आपके ही स्वरूप -- आपके ही तत्व के प्रतिपादक हैं । आप सम्पूर्ण बुद्धियों के द्वाता, बुद्धि के प्रकाशक और देवताओं के अधिपति हैं । नित्य-बोधस्वरूप गणेश ! आप नित्य, सत्य और निरोह हैं; आपको सदा-सर्वदा नमस्कार है ।'

इस प्रकार स्तवन करते हुए सुधांशु ने अन्त में कहा --

अज्ञानदोषेन कृतोऽपराधस्तं क्षन्तुमर्होऽसि दयाकर त्वम् ।
तवापि दोषः शरणागतस्य त्यागे महात्मन् कुरु मेऽनुकम्पाम् ॥

(गणेशपुं १/६१/४४)

ज्योतिष चन्द्रिका : सितम्बर ८९

‘दयानिधान ! मैंने अज्ञान-दोष के कारण आपके प्रति अपराध किया है; उसके लिए आप क्षमा-प्रदान करें। महात्मन् ! मैं आपकी शरण में आया हूँ। यदि आप शरणागत का त्याग कर देंगे तो यह आपके लिए भी दोष की बात होगी, अतः मुझपर कृपा कीजिए।’

चन्द्रमा के गद्गद्-कण्ठ से किये गये स्तवन और दण्डवत् प्रणाम से संतुष्ट होकर परम प्रभु गणेश ने कहा -- ‘चन्द्रदेव ! पहले जैसा तुम्हारा रूप था, वैसा ही हो जायगा; किन्तु जो मनुष्य भाद्रपद-शुक्ल-चतुर्थी को तुम्हें देख लेगा, वह निश्चय ही अभिशाप का भागी होगा। उसे पाप, हानि एवं मूढ़ता का सामना करना पड़ेगा। उस तिथि को तुम अदर्शनीय रहोगे। कृष्णपक्ष की चतुर्थी को जो लोगों द्वारा व्रत किया जाता है, उसमें तुम्हारा उदय होने पर यत्नपूर्वक मेरी और तुम्हारी पूजा होनी चाहिए। उस दिन लोगों को तुम्हारा दर्शन अवश्य करना चाहिए; अन्यथा व्रत का फल नहीं मिलेगा। तुम एक अंश से मेरे ललाट में स्थित रहो, इससे मुझे प्रसन्नता होगी। प्रत्येक मास की द्वितीया तिथि को लोग तुम्हें नमस्कार करेंगे।’

परम प्रभु गजानन के वर-प्रभाव से सुधांशु पूर्ववत् तेजस्वी, सुन्दर एवं वन्द्य हो गये।



भाद्रपद-शुक्ल-चतुर्थी को चन्द्र-दर्शन जनित दोष दूर करने के लिये श्रीमद्भागवत, दशम स्कन्ध के ५७वें अध्याय में वर्णित ‘स्यमन्तक-हरण’ प्रसंग पढ़ना या सुनना चाहिए।

शुभ - कामना संदेश

१. प्रिय बिटिया रन्जु को उसके १७वें जन्म - दिवस दिनांक ३ - ९ - ८९ के शुभ उपलक्ष्य पर हार्दिक शुभ - कामनाएँ व आशीर्वाद।
२. प्रिय बेटे सतीश व बिटिया रेनु को उनकी तीसरी वैवाहिक वर्षगाँठ दिनांक ६-९-८९ के शुभ-अवसर पर हार्दिक शुभ-कामनाएँ व आशीर्वाद।
३. श्री बलदेव राज बहल को उनके ४६वें जन्म-दिवस दिनांक १७-९-८९ के शुभ-अवसर पर हार्दिक शुभ - कामनाएँ।

□ राजा भारद्वाज

ज्योतिष चन्द्रिका : सितम्बर ८९,

गणेश का तुलसी को शाप

ब्रह्मकल्प की बात है। नवयौवन-सम्पन्ना परम लावण्यवती तुलसीदेवी भगवान् नारायण का स्मरण करती हुई तीर्थों में भ्रमण कर रही थीं। इस प्रकार वे पतितपावनी श्रीगंगाजी के पावनतम तट पर पहुँचीं।

‘अत्यन्त अद्भुत और अलौकिक रूप है आपका?’ वहाँ तुलसीदेवी ने अत्यन्त सुन्दर और और शुद्ध पीताम्बर धारण किये नवयौवनसम्पन्न परम सुन्दर कृष्णपादाब्जका ध्यान करते हुए निधिपति गणेश को देखा। उनके सम्पूर्ण शरीर में चन्दन की खौर लगी थी और वे रत्नाभूषणों से विभूषित थे। सर्वथा निष्काम एवं जितेन्द्रिय पार्वतीनन्दन को देखकर तुलसीदेवी का मन उनकी ओर वरबस आकृष्ट हो गया। विनोद के स्वर में उन्होंने योगाधिप खण्डेन्दुशेखर से कहा— ‘गजवक्त्र ! शूषकर्ण ! एकदन्त ! घटोदर ! सारे आश्चर्य आपके ही शुभ विग्रह में एकत्र हो गये हैं। किस तपस्या का फल है यह?’

‘वत्से ! तुम कौन हो और किसकी पुत्री हो ? यहाँ किस हेतु से आयी हो ?’ उमानन्दन एकदन्त ने शान्त स्वर में कहा— ‘माता ! तपश्चरण में विघ्न डालना उचित नहीं। यह सर्वथा अकल्याण का हेतु होता है। मंगलमय प्रभु तुम्हारा मंगल करें।’

‘मैं धर्मिज की नवयुवती पुत्री हूँ।’ तुलसीदेवी ने उपहास छोड़कर मधुरवाणी में परम जितेन्द्रिय शम्भुकुमार से निवेदन किया — ‘मैं मनोनुकूल पति की प्राप्ति के लिए तपस्या में संलग्न हूँ। आप मुझे पत्नी के रूप में स्वीकार कर लीजिए।’

‘माता ! विवाह बड़ा दुःखदायी होता है।’ घबड़ाते हुए लम्बोदर ने उत्तर दिया — ‘उससे सुख सम्भव नहीं। विवाह तत्त्वज्ञान का उच्छेदक और संशयों का उद्गम-स्थान है। तुम मेरी ओर से अपना मन हटाकर किसी अन्य पुरुष को पति के रूप में वरण कर लो। मुझे क्षमा करो।’

‘तुम्हारा विवाह अवश्य होगा !’ कुपित होकर तुलसीदेवी ने लम्बोदर को शाप दे दिया।

‘देवी ! तुम्हें भी असुर पति प्राप्त होगा।’ चकदन्त गणेश जी ने भी तुरंत तुलसी को शाप दिया — ‘उसके अनन्तर महापुरुषों के शाप से तुम वृक्ष हो जाओगी।’

पार्वतीनन्दन के अमोघ शाप के भय से तुलसीदेवी सर्वाग्रपूज्य हेरम्ब का स्तवन करने लगी ।

‘देवी ! तुम पुष्पों की सारभूता एवं कलांश से नारायण-प्रिया बनोगी !’ भक्तमुलभ मूषक-वाहन ने तुलसी की स्तुति से प्रसन्न होकर उनसे कहा — ‘यों तो सभी देवता तुमसे संतुष्ट होंगे, किन्तु श्रीहरि के लिए तुम विशेष प्रिय होओगी । तुम्हारे द्वारा श्रीहरि की अर्चना कर मनुष्य मुक्ति प्राप्त करेंगे; किन्तु मेरे लिए तुम सर्वदा त्याज्य रहोगी ।’ इतना कहकर भालचन्द्र गणनाथ तपश्चरणार्थ बदरीनाथ के संनिकट चले गये ।



आरती श्री गणेश जी की

जय गणेश, जय गणेश, जय गणेश देवा ।
 माता जाकी पारवती, पिता महादेवा ॥
 एक दंत दयावंत, चार भुजा धारी ।
 माथे सिंदूर सोहै, मूसे की सवारी ॥
 अँधन को आँख देत, कोढ़िन को काया ।
 बांझन को पुत्र देत, निर्धन को माया ॥
 पान चढ़े, फूल चढ़े और चढ़े मेवा ।
 लड्डुअन को भोग लगै, संत करे सेवा ॥
 दीनन की लाज राखो, शम्भु सुतवारी ।
 मनोरथ को पूरा करो, जाऊँ बलिहारी ॥
 जय गणेश, जय गणेश, जय गणेश देवा ।
 माता जाकी पारवती, पिता महादेवा ॥

बोलो गणेश जी महाराज की जय !

स्वाभिमान की सूली

बलदेव 'राही'

घरती की तरह, मेरे विचार

एक ही धुरी पर घूम रहे हैं

आकाश में उन्मुक्त विचर रहे-

बादलों की तरह

तुम्हारे विछोह के

पहाड़ से समय को चूम रहे हैं

मैं भविष्य के अधिकार में लिपटा

मौन वृक्ष हूँ

जो सदियों से -निश्चल

एक ही जगह खड़ा हूँ

तुम्हारे स्नेहिल-संस्मरणों की

-धूमिल तस्वीर में

मैं दृढ़ प्रेम-सा जड़ा हूँ

शायद इसलिय रुठे हो-

-कि तुम्हें मना लूंगा

पर किस तरह गिर सकूंगा नीचे

मैं.. जो स्वाभिमान की सूली पर टंगा हूँ

गजल

बलदेव 'राही'

बहुत मै सोचता हूँ
 पर न इतना सोच पाता हूँ
 मैं बच्चों की तरह से
 रेत के घर क्यों बनाता हूँ ?
 क्यों अकसर सोचता हूँ
 चाँद तारे तोड़ने की बात ?
 क्यों ना मुमकिन को अकसर
 दोस्तो मुमकिन बताता हूँ ?
 मुझे मालूम है, ख्वाबों से
 दिल बहला नहीं करते
 क्यों इनसे फिर अपनी
 लुटी रातें सजाता हूँ ?
 नहीं मुझमें कोई भी बात
 जो हमदम तेरे में है
 क्यों दुनिया को फिर भी
 आपका हमदम बताता हूँ
 किनारा सामने दिखना
 मेरी आंखों का धोखा है
 महज पानी ही पानी है
 जिधर कश्ती बढ़ाता हूँ

नाम : बलदेव राही (पेन्टर)

भारत स्टार्च एण्ड कम्पनी लिमिटेड, यमुना नगर, अम्बाला

धर्मयुग, सरिता, गृहशोभा, दैनिक ट्रिब्यून आदि में कुछ रचनायें
 प्रकाशित

पाठकों से निवेदन

(ज्योतिष चन्द्रिका के रचनाकारों से)

मान्यवर,

निवेदन है कि “ज्योतिष चन्द्रिका”, हिन्दी मासिक के सातवें अंक अक्तुबर मास प्रथम सप्ताह में प्रकाशित हेतु रचना/लेख सादर आमन्त्रित हैं। आपकी सारगर्भित लेख रचना अक्तुबर अंक में प्रकाशित कर हम कृतार्थ होंगे।

कृपया लेख शीघ्र 20 सितम्बर तक प्रेषित करें :-

- कृपया रचना साफ लिखावट में अथवा टाईप करा कर भेजें।
- फुलस्केप कागज पर हाशियां छोड़कर केवल कागज के एक तरफ रचना लिखें।
- रचना मौलिक व अप्रकाशित हो।
- रचना के साथ पता लिखा व टिकट लगा लिफाफा अवश्य भेजें ताकि रचना की स्वीकृति/अस्वीकृति की सूचना शीघ्र दी जा सके।
- साक्षातकार-परिचर्चा हेतु सम्पादक की अनुमति पहले लेना अनिवार्य है।
- अपनी रचना सामग्री इस पते पर प्रेषित करें :-

मुख्य सम्पादक - “ज्योतिष चन्द्रिका”

523, दक्षिणी सिविल लाईन

मुजफ्फरनगर-251002 (उ० प्र०)

फो० बा० नं० 47

रूड़की में अन्तर्राष्ट्रीय ज्योतिष-तन्त्र महासम्मेलन

ज्योतिष सदन अनुसंधान केन्द्र (रूड़की) द्वारा आयोजित चतुर्थ अन्तर्राष्ट्रीय ज्योतिष तन्त्र महासम्मेलन दिनांक 15 अक्टूबर 1989 दिन रविवार को रूड़की में होने जा रहा है।

सम्मेलन के संयोजक डा० पं० यादवेन्द्र नाथ शर्मा ने बताया कि इस सम्मेलन में देश-विदेश के 500 से अधिक विशिष्ट विद्वान, शोधकर्त्ता, वैज्ञानिक, पत्रकार, ज्योतिषाचार्य, सिद्ध तान्त्रिक, योगीराज, हस्तरेखा विद अंकाशस्त्री, रत्न विशेषज्ञ तथा आयुर्वेदाचार्य सम्मिलित होंगे। भोजन एवं आवास की व्यवस्था निःशुल्क है। सभी विद्वान सादर आमन्त्रित हैं। विस्तृत जानकारी हेतु 1 रु० के डाक टिकट सहित लिखें :- संयोजक अन्तर्राष्ट्रीय ज्योतिष तन्त्र महासम्मेलन ज्योतिष सदन अनुसंधान केन्द्र 153 गणेशपुर रूड़की पिन-247667 जनपद हरिद्वार (उ० प्र०)

ज्योतिष चन्द्रिका : सितम्बर 89/

शुभ-समाचार

इस वर्ष के अन्तर्गत सात छात्रों के विद्यालयों का खर्चा,
गणपति यज्ञ का आयोजन, तीन ब्राह्मण कन्याओं
का विवाह तथा शास्त्री राजधर पाण्डेय
के विवाह में ज्योतिष चन्द्रिका का
विशेष योगदान रहा है ।
आने वाले समय में
समाज - सुधार, गरीब छात्रों को
यथा सम्भव सहयोग तथा पिछड़े वर्ग के उत्थान
के लिए 'ज्योतिष चन्द्रिका' का भरसक प्रयास रहेगा ।

—मुरत्य सम्पादक

आपको ज्ञात होना चाहिए

कि तुतलाहट, हकलाहट, स्वर-दोष आदि वाणी-विकार ठीक हो सकते हैं ।
और
बहरे (गूंगे) बच्चों को बोलना सिखाया जा सकता है ।

उपचार के लिए सुप्रसिद्ध अनुभवी वाणी-विशेषज्ञ

के० पी० गुप्ता, एम.ए., एम.एस. (यू.एस.ए.)

भूतपूर्व वरिष्ठ वाणी उपचारक, अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान, नई दिल्ली

तथा

सेवा-निवृत्त प्रधानाचार्य, राजकीय लेडी लाइंस माध्यमिक बधिर विद्यालय, नई दिल्ली
से

101-ए, पाकिट-ए, मयूर विहार, फेज-11, दिल्ली-1100091 पर सम्पर्क करें ।

ज्योतिष चन्द्रिका : सितम्बर 89

मनन करने योग्य

(सद्गुणवती बहू)

□ ज्योतिष चन्द्रिका

पूर्व बंगाल के एक गाँव में हाराणचन्द्र चक्रवर्ती नामक एक ब्राह्मण रहते थे। उनके पुत्र का नाम था अनुकूलचन्द्र। हाराणवाबू संस्कृत के विद्वान् थे, थोड़ी अंग्रेजी जानते थे। पर अंग्रेजी शासन में अच्छी चाकरी (नौकरी) पाने के लिए अंग्रेजी की आवश्यकता समझकर उन्होंने अपने पुत्र अनुकूल को अंग्रेजी पढ़ायी। वह पहले स्कूल में पढ़ता था। फिर ढाका में जाकर उसने एम० ए० तक कर लिया। हाराणवाबू की जान-पहचान अधिक थी। अतः कुछ प्रयत्न तथा सिफारिश से अनुकूलचन्द्र की अच्छी नौकरी लग गयी। पढ़े-लिखे सरकारी नौकर के साथ अपनी कन्या का विवाह करने के लिए चारों ओर से कन्या वालों की माँग आने लगी। अन्ततः एक उच्च कुल के किन्तु निर्धन पिता की कन्या के साथ शुभगुणसम्पन्न उदार हृदय के श्री हाराणचन्द्र ने अपने पुत्र का विवाह कर दिया। बहू शशिवाला बहुत सुन्दर, सुशीला, बुद्धिमती, वित्तमय स्वभाव की और सेवा-भावपरायण आयी। इससे हाराणचन्द्र बहुत प्रसन्न थे। अनुकूल को तो भानो परम सुखपथ अत्यन्त दुर्लभ अमूल्य रत्न ही मिल गया। उसके मन में बड़ा आह्लाद था—ऐसी रूप-गुणवती पत्नी को पाकर। पर अनुकूलचन्द्र की माता मृणालिनी को सन्तोष नहीं था। वह कुछ लोभी स्वभाव की थी। उसने अपने पढ़े-लिखे सरकारी चाकरी में लगे हुए गुणी पुत्र के विवाह में बहुत बड़े दहेज की आशा कर रखी थी और लोग देने को तैयार भी थे, परन्तु हाराणचन्द्र ने केवल गुणवती लड़की देखी, दहेज को ठुकरा दिया और पत्नी की पूरी सम्मति न होने पर भी अनुकूल का विवाह कर दिया। मृणालिनी ने समझा था कि दहेज में कुछ तो आयेगा ही, पर शशिवाला के कुलशील-सम्पन्न विद्वान् पिता ऋण लेकर या घर-द्वार बेचकर दहेज दें—यह हाराणचन्द्र को संवधा अस्वीकार था, इसलिए कन्या के पिता के आपह करने पर भी उन्होंने कुछ भी न लिया। इससे मृणालिनी का क्षोभ और भी बढ़ गया। कुछ दिन तो ठीक चला। फिर मन का क्षोभ वाहुर प्रकट होने लगा और शशिवाला के प्रति वह दुर्व्यवहार उसके माता-पिता के लिए दुर्वचन के रूप में उत्तरोत्तर क्रमशः बढ़ने लगा। बेचारी निर्दोष सेवाशील बहू पर मिथ्या दोष लगाये जाने लगे और बात-बात में उस पर गालियों की बौछार होने लगी। एक दिन मृणालिनी ने एक जलती लकड़ी उसके पैर पर दे मारी। वह दर्द से एक बार तो चीख उठी, पर फिर तुरन्त ही चुप हो गयी। श्री हाराणचन्द्र अपनी पत्नी के इस दुर्व्यवहार से बड़े दुःखी हो गये। उन्होंने उसे समझाने का बहुत प्रयत्न भी किया, पर मृणालिनी को वे समझा नहीं पाये और मन-हीन मन कुड़ते रहे अपनी पत्नी की इस वीवता पर।

अनुकूलचन्द्र के दुःख का पार नहीं था। कई बार उसके मन में बड़े जोर का तूफान उठता, पर शशिवाला के सुधासावी शीतल वचन सलिल से वह शान्त हो जाता। बड़ा विचित्र स्वभाव था शशिवाला का। लगातार इतने भयानक अत्याचार होने पर भी उसके मन में कुछ भी विचार नहीं आया और न उसके चेहरे पर ही कभी कोई विकार की रेखा प्रकट हुई। भीषण वज्राघात सहने वाले अचल अटल गिरिराज के समान वह प्रसन्नता से सब कुछ सह रही।

एक दिन माता के भीषण दुर्व्यवहार से अनुकूलचन्द्र अत्यन्त दुःखी हो गये और उन्होंने अलग हो जाने की बात सोची। वे कुछ कड़ी बात कहने वाले ही थे कि शशिवाला उन्हें अलग ले गयी। वड़ी नम्रता के साथ समझाकर धोली—‘तुम इतने क्षुब्ध क्यों होते हो? मानाजी ने दहेज की बड़ी आशा लगा रखी थी, उनकी वह आशा पूरी नहीं हुई। इससे उन्हें क्षोभ होता स्वाभाविक ही है। जब कामना पर चोट लगती है तब वह क्रोध के रूप में प्रकट होती है एवं क्रोध एक ऐसी बीमारी है जो मनुष्य को कर्तव्याकर्तव्य के ज्ञान से वंचित करके उसके द्वारा उसी के अकल्याण का

कार्य करवा देती है। माताजी इसी बीमारी से ग्रस्त हैं, वे अपनी सहज चेतना में नहीं हैं। इसी से वे हम लोगों के साथ अमित दुर्व्यवहार के रूप में अपनी ही बड़ी हानि कर रही हैं। इस अवस्था में हम लोगों का यह कर्तव्य कदापि नहीं कि हम अपने मन की मुख-शान्ति की आशा से उनके साथ बदले में अनुचित व्यवहार करके उनकी बीमारी को और भी बढ़ा दें। हमें सब कुछ सहन करके उनका हितसाधन करना तथा दिगुद्ध मन से सेवा करके उनकी बीमारी को मिटाने का प्रयत्न करना चाहिए। सेवा का आदर—सेवा का मूलसाधन तो हो ही नहीं। सेवा को सेवा न मानकर उसे तंग करना बतलाया जाय और सेवा के बदले में निस्स्कार, अपमान, भर्त्सना-कुवाच्य लिये जायें, गाली-गलौज किया जाय, इतने पर भी सेवा का कार्य बिना भयमोक्ष, शान्ति के साथ चलता रहे, तभी वास्तविक सेवा होती है। पागल तो अपने मन की करेगा ही, उसके बर्ताव को देखने से काम नहीं चलता। माताजी इस समय पागल सी हो गयी हैं। वे दुःखी जतनी हैं। तुम्हें उन्होंने हृदय का रस देकर पाला-पोसा है। अतएव वे मेरी परम पूजनीया हैं। तुम एवं तुम्हारी धर्मपत्नी होने के कारण मैं—दोनों उनके उपकार-ऋण से कभी उच्छ्रान्त हो ही नहीं सकती। एक बात और है—अपमान और गाली लेने से लगती है। हम लोग उसे पुस्कार क्यों न मानें।

इस प्रह्वर शशिवाला ने पति को बहुत-सी बातें समझाकर शान्त कर दिया और वह सब कुछ सहर्ष सहन करती हुई बड़ी छुट्टियाँ ही तथा सावधानी के साथ सास-ससुर तथा स्वामी की यथायोग्य सेवा करती रही। वह अपने स्वभाव पर अटल बनी रही। पर अभी इसकी तपस्या का फल प्रकट नहीं हुआ—मान मृणालिनी का व्यवहार नहीं बदला।

एक दिन पुनः रसोईघर में गुस्से में पागल मृणालिनी जलनी लकड़ी हाथ में लेकर शशिवाला की ओर दौड़ी। गुस्से के जोश में उसे होश नहीं था, पैर फिसल गया और वह गिर पड़ी। बड़ी चोट लगी। साथ ही जलती लकड़ी से उसकी साड़ी में आग लग गयी और वह जलने लगी। शशिवाला पानी का कलश लेकर सामने से आ रही थी, वह चीख सुनते ही कलश वहीं छोड़कर दौड़ी और उसने जाकर सास को उठाया, उसकी आग बुझायी, पर इस बीच वह बुरी तरह जल गयी थी। आग दुःखने में शशिवाला के हाथ भी कई जगह दाख गये, पर उसने इसकी परवाह न कर सास को उठाकर अपनी गोद में सुला लिया। मृणालिनी इस अवस्था में कराहती हुई भी उस पर गालियों की बोछार कर रही थी। गालियों के साथ ही कह रही थी—‘तेरे ही कारण मैं गिरी, मेरे चोट लगी और मैं जल गयी, तेरा सत्यानाज हो।’ शशिवाला कुछ नहीं बोली। वृद्ध हाराणचन्द्र नित्य की भाँति नदी-किनारे स्नान-भजन करने गये हुए थे। अनुकूल वातु भाग्य से उस दिन घर आये हुए थे। वे दौड़े। दोनों पति-पत्नी ने मिलकर माँ को चारपाई पर सुलाया। दैव हुआ मे गये। चिकित्सा प्रारम्भ हुई। शशिवाला सच्चे तन-मन से सास की सेवा में जुट गयी। दवा देना, पट्टी लगाना, टट्टी-मूत फेंकना, खँखार हाथ में लेकर फेंकना, अपने हाथ से पंहे में श्रास देना, अंग बढाना—सभी कार्य वह बड़ी सुधी-सुधी करने लगी। घर का काम तो सँभाली ही थी, पर सेवा में जरा भी छुट्टि नहीं आने दी। वह रात-दिन उसके पास ही बनी रहती। सास मृणालिनी धीरे-धीरे ठीक होने लगी—साथ ही अब उसका हृदय भी पलटने लगा। चार-पाँच गद्दीने वह छटिया पर रही। इसी बीच शशिवाला की अछुतिम सेवा के कारण उसके हृदय में अपनी करणी के लिए परमात्मन की ऐसी भवानक आग भड़की कि उसने उसके हृदय की समस्त मल-राशि को जला दिया। शशिवाला की सहज ससुर आदर्श सेवा के अमृत रस से उसके सारे पाप धुल गये और उसके शुद्ध हृदय में शशिवाला के प्रति सच्चे आदर-सम्मान स्नेह का समुद्र उमड़ पड़ा। वह अच्छी हो चली थी। एक दिन उसने कहा नहीं गया। वह रो पड़ी और उसने शशिवाला के दोनों हाथ पकड़कर अपने मस्तक पर रखकर कहा—‘वह! तू सधनी है। मैं नरक की दिसाचिनी हूँ। तू मेरे दोषों को क्षमा कर।’ वह भी रोने लगी। आज उनके जीवन ग्रन्थ का एक नया सधुर अध्याय आरम्भ हो गया।

मृणालिनी शरीर से ही अच्छी नहीं हो गयी, मन से भी अच्छी हो गयी। उसके व्यवहार के कण-कण में शशिवाला के प्रति स्नेह-गुहा बरसने लगी। सारा घर परम पवित्र तथा परम सुखी हो गया।

भाग्य रेखा

17

जब कभी बनी बनाईं योजनायें निष्फल हो जाती हैं और जब उपाय धरे धराये रह जाते हैं तो हम कहते हैं कि भाग्य-रेखा देही है। इसके विपरीत जब हमारे कार्य जमायात सिद्ध हो जाते हैं और प्रत्येक योजना सफल होती है तो हम कहते हैं कि भाग्य-रेखा सीधी है।

मानव में बान कुछ और ही है। प्रत्येक जीव अपनी अपनी वृत्ति के अनुसार हम संसार में विचर रहा है। उदासी वृत्ति यदि भोगों की लालसा में विचर रही है तो वह भागी और यदि निज स्वरूप आत्मा की खोज में लगी हुई है तो वह योगी कहलाता है। भोग के विस्तृत क्षेत्र में विचरण करने वाले का कोई प्रत्याशान न होने के फलस्वरूप उसकी वृत्ति उसके चतुर्दिश ऐसा रहता जान दुनयी चली जाती है कि उसमें से निकलने के लिए कोई उपाय प्रभावकारी सिद्ध नहीं होता। ऐसी निरन्तर अवस्था दुःख, क्लेश, शंका और भय की अवस्था होती है और वृत्ति परेशान होकर शांति की आवश्यकता में प्रयत्न रहती है। ऐसी वृत्ति में किया गया प्रत्येक कार्य निष्फल हो जाता है और ऐसी वृत्ति से विचारी हुई हर एक आत्मा कदापि सफल नहीं होती। साधारण व्यक्ति ऐसी अवस्था का ज्ञान न होने के कारण प्रायः यह कहते सुने जाते हैं कि उनकी भाग्य-रेखा देही या बक है।

जब मनोवृत्ति शांत होती है, भोग-व्यामनास जीवन के परिणाम को समझकर उसके सम्पर्क से कोमों दूर होती है और निज प्रति निष्कल आत्मत्व को सांसारिक बंधन, भोग-विवास एवं हानि-लाभ पर व्योधावर नहीं करती, उस समय ऐसी शान्तमयी वृत्ति में किया गया हर एक कार्य स्वतः सिद्ध हो जाता है। साधारण व्यक्ति को इस अवस्था का अनुभव न होने के कारण वह समझता है कि भाग्य रेखा सीधी या मरल है।

स्मरण रहे कि भाग्यो ने वृत्तियां बनती हैं, वृत्तियों ने कर्मों का जन्म होता है और कर्मों से संस्कार बनते हैं तथा संस्कारों के अच्छे और बुरे होने से भाग्य को अच्छा और बुरा कहा जाता है। इसलिए यदि भाव शुद्ध और सात्विक हो तथा परावकारी और शांतमय हो तो जीवन भी भाग्यमयी होगा। यदि भाव अशुद्ध, स्वाभाव और अज्ञान हो तो जीवन भी अज्ञान और दुःखकारी होगा। इस दशा में साधारण प्राणी यदि यह कह दे कि उसकी भाग्य-रेखा बक है, तो कोई फल प्राप्त नहीं।

अतः हमें यह जान लेना आवश्यक है कि भाग्य का भाव उसके अन्तिम हाथ में है। अतः भाग्य को बनाने और बिगाड़ने वाला स्वयं ही है। हा, यह बात जरूर है कि वस्तुतः भाग्य विषय तो एक क्षण में सकता है किन्तु विषय ही भाग्य को बदलने से नहीं बचा नहीं जा सकता। जहां भावों के अशुद्ध होने हो वर्षों या बना बनाया क्षेत्र भाव की ओर में सुदृढ़-अशुद्ध हो जाता है, जहां भावों को शुद्ध एवं शांतमय बनाने के लिए कई वर्ष लग जाते हैं, क्योंकि अशुद्ध भावों में अनेक भाव एक एक कार्य के शुद्ध और भाव होते हैं और भावों के अनेक एवं शुद्ध होने पर वृत्तियां शांतमय हो जाती हैं। यही वृत्तियां आगे जाकर कर्मों और संस्कारों को शुद्ध और शांत करती हैं। अतः भाग्य बनाने में बड़े बड़े कार्य का अत्यन्त जग है। शुद्ध भाव व्यक्ति बंदी है जो भाग्य के पीछे छिपे हुए भावों को शांत करके भाग्य को शुद्ध और शुद्ध बनाना सदा जाता है और इस शुद्ध भाव को समझकर अनेक कर्मों और आशान्तों के फल प्राप्त कर लेता है। अतः भाग्य के पीछे छिपे हुए भावों को शांत करके भाग्य को शुद्ध और शुद्ध बनाना सदा जाता है।

सन् 1989 ई० (1+9+8+9=9)

रह वर्ष अंक 9, स्वामी मंगल MARS से प्रभावित होकर विश्व के लिए चुनौती का वर्ष होगा। विश्व की राजनीति अपने कार्य में अल्पसंख्यकों का हस्तक्षेप स्वीकार नहीं करेगी, किन्तु दूसरों के हस्तक्षेप को रोकने में संयम से काम अवश्य लेगी। अरब राज्य में सत्ता-लोलुपता बढ़कर वरिष्ठ अधिकारियों का सिरदर्द बनेगा। भारत-विरोधी राष्ट्र आपसी वैमनस्य भावना को भूलकर मदद देने-देने की भावना अपनायेंगे। भारत ही सबसे भददगार सिद्ध होगा। सत्तारूढ़ कांग्रेस का संगठन बढ़ेगा। यत्र-तत्र नक्सल पन्थियों का विशेष उपद्रव देखने में आयेगा। भारतीय धर्म-योग-विज्ञान की मान्यता अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर बढ़ेगी। कहीं-कहीं हिंसात्मक लूटमार की घटनाएँ बढ़ जायेंगी। भारतीय चलचित्रों के निर्माण में विश्वरिकार्ड कायम होगा। कुछ प्राणों में पत्रकारों द्वारा कलमचन्द हड़तालें सम्भव होंगी। वर्तमान गणतन्त्र-वर्ष भारत में कुछ क्रान्तिकारी घटनाओं का जन्म देगी। यत्र-तत्र बाढ़ एवं अग्निकाण्ड से भारतीय नागरिकों को आार कष्ट होगा। आपाद मास में नैऋत्यकोण की वायु चलने पर वरमता हुआ मेघ भी छूट जायेगा और वर्षा की कमी से खड़ी फसल सूख जाने की आशंका होगी। चैत्र में घी-गुड़-खाण्ड का बाजार भाव बढ़ेगा। जनवरी पूर्वार्ध में पहिला सत्ता-धिकारियों की उन्नति होगी। यत्र-तत्र चोरी-डकैती की अधिक घटनाएँ होंगी। जनवरी उत्तरार्ध में कड़के की सर्दी से मृत्युसंख्या बढ़ेगी। फरवरी पूर्वार्ध में ओला-गला, हिमपात एवं यत्र-तत्र बूँदा-बाँदी से दुर्गिषमय फरवरी के उत्तरार्ध तक संभव होगा। मार्च पूर्वार्ध में राजनेताओं की अनीति से जनता को बेहद काट होगा। मार्च उत्तरार्ध में जनता के अन्तर रक्तत्रिकारादि रोगों का दाहल्य होगा। अप्रैल पूर्वार्ध में दो प्रमुख देशों के वंगमस्य बढ़ जाने की आशंका होगी। अप्रैल उत्तरार्ध में गुड़-खांड, घृत-तेल, पेट्रोल में कुछ सन्दी का योग बनेगा। मई पूर्वार्ध में मशीनरी-ऑजार आदि का उतारना पूर्वपेक्षा कम होगा। मई उत्तरार्ध में आर्थिक और सामाजिक संकटें कुछ कम हो जायेंगी। जून पूर्वार्ध में वर्षा पर बाधु-संचार का प्रतिकूल प्रभाव पड़े लगेगा। जून उत्तरार्ध में अधिक वर्षा से हानि या राजविग्रह से चतुर्दिक अशान्ति फैलेगी। जुलाई पूर्वार्ध में चौरासिन्धव, रोग-शोकादि से प्रजावर्ग में क्षोभ व्याप्त होगा। जुलाई उत्तरार्ध में आकस्मिक अशान्ति की स्थिति पश्चिमी देशों में बन सकती है। अगस्त पूर्वार्ध में ग्रामोन्मुखी नीतियाँ आवश्यक सन्दर्भ में विकासोन्मुखी गिद्ध हो सकेगी। अगस्त उत्तरार्ध में राजनीतिज्ञों के घेरे में बहुचर्चित नवोद्दिन साधु-मन्त-तान्त्रिकों की संख्या बढ़ती जायेंगी। सितम्बर पूर्वार्ध में सूखखोरी की कपाल और मँडगाई के खिलाफ प्रदर्शन बढ़ेगा। सितम्बर उत्तरार्ध में विभिन्न क्षेत्रों में साम्राज्यवादियों की पहुँच नये पिट्ट तैयार करने पर जोर देंगे। अक्टूबर पूर्वार्ध में मजदूर संगठन बनाने का कार्य प्रशासनिक अधिकारियों द्वारा होगा। अक्टूबर पूर्वार्ध में तमिलनाडु, पंजाब, हरियाणा और दिल्ली का राजनीतिक अभ्युदय होगा। नवम्बर पूर्वार्ध में लेखन, शिक्षण, प्रशिक्षण, ज्योतिष और पत्रकारिता का निकट भविष्य उज्ज्वल बनेगा। नवम्बर उत्तरार्ध में खाद्य-पदार्थ एवं कच्चे माल महँगे होकर बाहि-बाहू व्याप्त होगी। दिसम्बर पूर्वार्ध में यत्र-तत्र महामारी जैसा उग्ररोग फैल सकता है। दिसम्बर उत्तरार्ध में बाधु-मंदार अनुकूल न होने से फसल नष्ट होगी। इस वर्ष मार्च, जून तथा सितम्बर मास में 9, 15, 18, 24, 27 तारिखें, मंगलवार तथा शुक्रवार का दिन प्रायः संप्रदित और जनहित में शुभफलदायी रहेगी। इस वर्ष ता० 21 मार्च से 27 अप्रैल तक तथा 21 अक्टूबर से 27 नवम्बर तक राष्ट्रीय या अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर विविध घटनाओं का समय सिद्ध होगा चाहिए।

सन् 1989 ई० में मंगल ग्रह से प्रभावित होकर

वृष, कर्क, धनु, कुम्भ राशि वाले राजनीतिज्ञ महानुभाव आदिज एवं आयेग में जल्दी आकर राजनीति को नया मोड़ देंगे और पदस्थ सफल रह सकेंगे। मेष, मिथुन, वृश्चिक, मीन राशि वाले व्यापारीवर्ग व्यापार में स्वतन्त्र

ज्योतिष चन्द्रिका : सितम्बर 89/22

प्रकृति से परिवर्तन करेंगे। उल्टी परिस्थितियों में भी लड़ने की शक्ति रखकर लाभ कमा सकेंगे। मेष, वृष, कर्क, मिथु, धनु और मीन राशि वाले खिलाड़ी और कलाकार वगैरह कुछ भटकाव महसूस करेंगे। वासना-तृप्ति नहीं होगी। कोई नये प्रयत्न में सफल नहीं होंगे। वृष, मिथुन, कन्या, तुला, मकर, कुम्भ राशि वाले विद्यार्थीवर्ग अपने अध्ययनक्रम में विशेष आकर्षण पाएँगे। परीक्षा-प्रतिযোগिता में सफल होकर सबको मुग्ध कर देंगे। मिथुन, मिथु, तुला, धनु, कुम्भ राशिवाले प्रशासनिक अधिकारी वगैरह स्त्री-वच्चे सुखी व सन्तुष्ट रहेंगे, विकास के पथ पर अग्रसर होंगे, उच्चाधिकारियों की कृपा बनेगी। कर्क, कन्या, वृश्चिक, मकर राशि वाले कृषक वर्ग उत्पादन और संरक्षण में सफल होंगे, किन्तु रात्रि-जागरण की आदत से बचना चाहिए। भूमि का क्रय-विक्रय भी संभव होगा। सिंह, तुला, धनु, कुम्भ राशि वाले बुद्धिजीवी वर्ग चालू कार्य का परित्याग कर नया कार्य आरम्भ करने की बात सोचेंगे। असफल होकर दुःखी, ऋणी और झुन्ध भी रहेंगे। कन्या, वृश्चिक, मकर, मीन राशि वाले नौकरीजीवी लोग आर्थिक उत्कर्ष, अवस्थित दिनचर्या, शुभ-समाचार, स्वास्थ्य एवं सम्मान प्राप्त करेंगे। स्थानपरिवर्तन हेतु प्रयत्न कर सकते हैं। मेष, तुला, धनु, कुम्भ राशि वाली महिलाएँ गृह-प्रपञ्च में अस्त-व्यस्त रहेंगी। स्वास्थ्य में सुधार होगा। कार्यक्रमों में सफलता मिलेगी, किन्तु मानसिक तनाव दूर नहीं होगा। वृष, वृश्चिक, मकर, मीन राशि वाले घर-गृहस्थ लोग घरेलू सामंजस्य में लगे रहेंगे। आत्मीय जनो से वैमनस्य रहेगा। अधिक जग-सम्पर्क से हानि होगी। भारी जिम्मेदारियाँ बढ़ेंगी। मेष, मिथुन, धनु, कुम्भ राशि वाले नवजात बालक-बालिकाएँ अपने परिवार के लिए शुभकारक मिद्ध होंगी। अपच और आँख-कान-दाँत के रोग से पीड़ित रहकर भी अच्छी आयु प्राप्त करेंगे। वृष, कर्क, मकर, मीन राशि वाले रोगक्रान्त एवं ऋणग्रस्त लोग अधिकांश दुर्बचन के शिकार बनेंगे। आरोग्यता और ऋणोद्धार पाने में सन्देह होगा। घरेलू कलह से दुःखी रहेंगे।

“इस कदर”

□ स्वामी परमार्थ भारती

41 भगत सिंह रोड, मुजफ्फरनगर

डालियाँ भी झुक रहीं वो बाँटता है इस कदर
छवाईशें भी रो रहीं तू माँगता है इस कदर
वो हर कदम पे साथ है जरा आँख को तू खोल ले
जाने कहाँ-कहाँ उसे तू ढूँढता है इस कदर
मौत के सिवा प्यारे कुछ भी मिलना तय नहीं
क्यूँ फिजूल वेखबर तू भागता है इस कदर
पंडितों और मोमिनो की क्या जरूरत है तुझे
नूर उसका, दिल ये तेरा जानता है इस कदर
होकर दूर धर्मों से जो उसके साथ हो लिया
शराब के बिना भी वो झूमता है इस कदर
दुनिया का कोई धरम प्यार से ऊँचा नहीं
प्यार है तो है खुदा क्यूँ भूलता है इस कदर

□

ज्योतिष चन्द्रिका : सितम्बर 89/23

चतुराई



□ ज्योतिष चन्द्रिका

संसारी जीवन की सफलता के लिए चतुराई बड़ा आवश्यक गुण माना जाता है। चतुर मनुष्य अपने काम को सुगमता से पूरा कर लेता है। वह अपने आपको अनेक प्रकार के फँसों में पड़ने से बचा लेता है, दूसरों के मन के छिन्ना भावों को सहज में समझ लेता है और अपने आचरण को परिस्थिति के अनुसार बना लेता है। जिस मनुष्य में चतुराई नहीं, वह पद-पद पर ठगा जाता है। संसार के लोग उसकी सरलता से अनुचित लाभ उठाते हैं, उसे अपना काम निकाल लेते हैं और उसके बाद उसे मूर्ख समझकर उसकी हंसी उड़ाते हैं। वह दूसरों का भला करके भी किसी प्रकार की भलाई का भागी नहीं होता। चतुराई कार्य-कुशलता का एक मुख्य अंग है तथा संसारी प्रतिष्ठा का सबसे बड़ा सहारा है।

चतुराई का वास्तविक स्वरूप क्या है? इस बात पर बहुत ही थोड़े विद्वानों ने विचार किया है। अंग्रेजी में चतुराई को टेक्ट (Tact) नाम से पुकारा जाता है। टेक्ट का एक स्वभाव सामाजिकता अथवा व्यवहार-कुशलता (Worldly wisdom) है। टेक्ट अनेक गुणों के मिश्रण का नाम है। इसमें बुद्धिमानी, गम्भीरता, आत्मसंयम, कार्य-तत्परता आदि अनेक गुणों का समावेश होता है। इन सब गुणों का उपयोग किसी संसारी कार्य की सफलता के लिए किया जाना आवश्यक है।

यदि हम चतुराई की तुलना चालाकी से करें तो उसका बहुत कुछ स्वरूप समझ में आ सकता है। चालाकी चतुराई की जेठी बहिन है। दोनों की माता दुनियादारी है। संदेह, सरलता, सतोष और शांति दोनों से कोसों दूर हैं जो लोग सांसारिक वैभव के अभिलाषी हैं, उन्हें चालाकी और चतुराई का पहारा सदा लेना पड़ता है। यदि हम संसार की धाँख खोलकर देखें तो उसे चतुराई और चालाकी से ही भरा पायेंगे। जब हमसे में इन गुणों की व्याप्ति इतनी अधि देखते हैं तब हम भी चाहे कितने ही सरल चित्त क्यों न हों, चालाक और चतुर बनने का प्रयत्न करते हैं। यदि ऐसा करें तो जान पड़ता है कि हमारा अस्तित्व ही नहीं है।

मनुष्य का सांसारिक अनुभव ज्यों-ज्यों बढ़ता है, त्यों-त्यों वह दुष्ट होता जाता है। उसके चित्त की सरलता जो बाल्यकाल में रहती है, जिसके कारण वह सहजानन्द का अनुभव करता है, जाती रहती है। अतएव जीवन को सुख बनाने के लिए यह आवश्यक जान पड़ता है कि मनुष्य भोलाभाला ही रहे।

चतुर तो प्रत्येक मनुष्य को बनना ही पड़ता है, पर प्रश्न यह है कि क्या यह गुण एक प्रशंसनीय गुण है। हाँ, कुछ दूर तक अवश्य है। पर अधिक चतुराई ईश्वर को प्यारी नहीं है। हजरत ईसा ने अपने शिष्यों को पहाड़ पर उपदेश दिया, उसमें एक बात यह भी कही—Blessed are the pure of hearts for they shall see God. जो मनुष्य सरल चित्त हैं, वे धन्य हैं, क्योंकि वे ही परमात्मा को देखेंगे। जो मनुष्य चतुर होता है, वह अपनी चतुराई के अभिमान में आकर ईश्वर के सामने भी चतुराई चवाने का प्रयत्न करता है, पर ईश्वर तो अंतर्दामी है, वह हमारे मन की बात जान लेता है और हमारे उस धोखा देने के प्रयत्न को निष्फल कर देता है।

चालाकी और चतुराई—दोनों में कुछ-न-कुछ असात्व व्यवहार रहता है। चालाक मनुष्य स्वयं दूसरों को धोखा देने का प्रयत्न करता है। उसका बाहरी व्यवहार कुछ और होता है और आन्तरिक इच्छाएँ कुछ और। उस उद्देश्यों का पता दूसरों को नहीं चल पाता। देखने में वह बड़ा उदार चित्त, हंसमुख, सहनशील और प्रियभावी होता है पर उसके हृदय में सदा कतरनी चला करती है। वह अपने मन की चाह दूसरों को नहीं देता, परन्तु हमारे मन की व

ज्योतिष चन्द्रिका : सितम्बर 89/24

जानने की चेष्टा सदा किया करता है। अपना स्वार्थ साधने के लिए वह आपको साष्टांग दण्डवत करेगा, हजार बार आपकी कुशल पूछेगा और जब स्वार्थ सिद्ध हो जायेगा तब जैसे हम नारंगी से रस निचोड़कर उसके छिलके को फेंक देते हैं, उसी प्रकार वह आपका परित्याग कर देगा। इतना ही नहीं, यदि अपने स्वार्थ-साधन में उसकी भलाई करने वाला व्यक्ति भी बाधक हो तो उसके विनाश करने में वह लेशमात्र भी नहीं हिचकिचायेगा। यह चालाक मनुष्य का वास्तविक स्वरूप है। उसके जीवन में न तो किसी प्रकार की नैतिकता रहती है और न वास्तविक धार्मिक भाव। हाँ, धर्म का धाट्टम्वर अवश्य रहता है।

चालाक मनुष्य की परख कर लेने वाला व्यक्ति चतुर कहा जाता है। पर जो जिसकी खोज करने में सगर्भ होता है, उगमें भी अवश्य वे गुण रहने चाहिए, जिसके कारण वह खोज के कार्य में सफल हो। अंग्रेजी में कहावत है—
Set a thief to find thief चोर का पता चोर ही लगा सकता है। यदि चोर चालाकी में निपुण है तो पुलिस चतुराई में। पर चोरी कर सकने में दोनों निपुण होते हैं। एक व्यक्ति अपनी चोरी की वासना को सीधे तृप्त करता है और दूसरा उल्टे।

चालाक मनुष्य असत्य बोलता है और जब तक पकड़ा न जाये, तब तक उग असत्य को बोलने के लिए उसके हृदय में किसी प्रकार की ग्लानि नहीं होती। वह एक ही प्रकार के नियम को मानता है और वह है वाहरी दण्ड। चतुर मनुष्य शब्दों से तो सदा सत्य बोलता है, पर उसका सत्य प्रामाणिक नहीं होता। वह अपनी बात के अनेक अर्थ लगा लेता है। वह अपनी समझ में नैतिक जीवन ही व्यतीत करता है, परन्तु वास्तव में उसके जीवन में अनेक प्रकार का असन् भरा रहता है। जब प्रत्येक व्यक्ति एक-दूसरे को धोखा देने को तैयार है तब या तो मनुष्य को चाहिए कि वह संसार से विरक्त हो जाय या जिस प्रकार दूसरे व्यक्ति व्यवहार करें, उनके अनुकूल आचरण बना ले।

चतुर मनुष्य को चाहिए कि वह सदा अपने आपकी परीक्षा करता रहे। सोचनीय बात तो यह है कि चतुर मनुष्य को अपने आपका ज्ञान बिल्कुल नहीं रहता। वह दुनिया के धोखों से तो बच सकता है, परन्तु अपने आपको आप से ही धोखा दिये जाने से नहीं बचा पाता। अतएव नव चतुराई में सबसे बड़ी चतुराई इस बात में है कि मनुष्य चतुराई को भारी सूझता समझे। चतुराई में मनुष्य व्यवहार-कुशलता भले ही प्राप्त कर ले, अपने धन, मान या मर्यादा की रक्षा करने में भले ही सफल हो, पर आत्मानन्द-लाभ नहीं कर सकता। वह साधुओं की संगति से दूर रहता है। वह संसार के सभी लोगों को धूर्त समझता है, अतएव वह नर में रहने वाले नारायण को पहचान नहीं पाता। इससे तो लाभ इसी बात में है कि मनुष्य ऐसी चतुराई से दूर रहे। वास्तविक चतुराई वही है जो हमें परमात्मा की ओर ले जाय या हमें अपने स्वरूप का दर्शन करा दे। कोई-कोई महापुरुष संसार में रहकर इस चतुराई को प्राप्त करते हैं।

० ० ० ०

सूर्य—एक नन्हा तारा

□ ज्योतिष चन्द्रिका

५

तुम यह जानने के लिए उतावले हो रहे होगे कि आग का गोला लगने वाला इतना चमकदार सूर्य नन्हा-सा तारा कैसे हो सकता है ? इसके मुकाबले में दूसरे तारे कैसे हैं ?

रात के समय आकाश की ओर आंखें उठाओ। तुम्हें तारे ही तारे दिखाई पड़ेंगे। आकाश में फैले तारों के इस संसार को हम ताराविश्व कह सकते हैं। जो तारे हम देख सकते हैं, वे हमारे ताराविश्व के तारे हैं। मतलब तुम समझ गये होंगे—जो ताराविश्व हमें दिखाई पड़ना है, वह हमारा ताराविश्व है। यानी आकाश में ऐसे और भी कई ताराविश्व हैं, लेकिन वे हमसे इतनी दूर हैं कि हमें दिखाई नहीं पड़ते। इसलिए हम इस प्रसंग में केवल अपने ताराविश्व की ही बात करेंगे।

तुम्हें यह सुनकर तो वेहद ताज्जुब होगा कि इस हमारे ताराविश्व में ही कुछ तारे सूर्य से हजारों-लाखों गुना बड़े हैं। और इतने बड़े-बड़े तारों की संख्या भी कोई एक-दो या चार-दस नहीं बल्कि लाखों करोड़ों में है। अब जरा यह सोचो कि जिस ताराविश्व में इतने बड़े-बड़े अगणित तारे हैं, वह ताराविश्व कितना लम्बा-चौड़ा होगा ? आओ जरा देखें तो सही।

लेकिन पहले तुम्हें एक और अनोखी बात बता दूं—आकाश की दूरियों को मील, फर्लॉंग या मीटर, किलो मीटर से नहीं नापा जा सकता। अगर हम तरह-तरह का पन्ने के पन्ने भर जाएंगे। फिर जो आंकड़ा सामने आएगा वह इतना लम्बा-चौड़ा होगा कि बोलते भी नहीं बनेगा। इसलिए आकाश की दूरियां नापी जाती हैं प्रकाश से।

तुम हूँगो कि प्रकाश कोई गज फुट-इंच है कि उसमें दूरी नापेंगे ? लेकिन बात सही है। इसको जरा आसान तरीके से समझो। बारह इंच का एक फुट होता है न ? और तीन फुट का एक गज। अब हम कोई चीज नापते हैं—मान लो, वह 24 इंच है। हम बोलते समय 24 इंच न कहकर सीधे-सीधे 2 फुट कहेंगे। अगर नाप 12 फुट निकली तो हम 144 इंच या 12 फुट न कहकर चार गज कहते हैं।

प्रकाश से दूरी नापने का ढंग भी ऐसा ही है। प्रकाश एक सेकण्ड में 2,99,792 किलोमीटर चलता है। यानी जो चीज हमसे 2,99,792 किलोमीटर दूर हो, उसके लिए हम कह सकते हैं कि वह हमसे एक प्रकाश सेकण्ड दूर है।

एक बार फिर समझ लो—अगर कहा जाए कि सूर्य हमसे सवा आठ प्रकाश मिनट दूर है—तो इसका क्या मतलब हुआ ?

मतलब साफ है—सवा आठ मिनटों को सेकण्ड बनाओ और उसमें 2,99,792 से गुणा कर दो। फिर जो आंकड़ा सामने आएगा, सूर्य हमसे उतने ही किलोमीटर दूर है। लेकिन जब हिसाब-किताब करना ही है तो गड़बड़ क्यों असल में सूर्य हमसे पूरे सवा आठ ही प्रकाश मिनट दूर नहीं है। यह तो दोनों में आसानी की वजह से कह दिया। एकदम सही दूरी है—8 मिनट और 20 सेकण्ड। यानी कुल दूरी 500 प्रकाश सेकण्ड हुई। अब इसी 500 से 2,99,792 गुणा करो। जवाब आया—सूर्य हमसे चौदह करोड़ अठानवे लाख छिन्नानवे हजार किलोमीटर दूर है।

इसी तरह प्रकाश से नापें तो हमारे ताराविश्व का व्यास एक लाख प्रकाश वर्ष है। व्यास समझो तो ? गोला खींचो। फिर उसके बीचो-बीच दोनों सिरों को गिलाते हुए एक रेखा खींचो। इस रेखा की लम्बाई व्यास कहना है। यानी हर सेकण्ड 2,99,792 किलोमीटर की तेज रफ्तार से दौड़ता हुआ प्रकाश हमारे ताराविश्व के एक ओर

ज्योतिष चन्द्रिका : सितम्बर 89/26

दूरे-दूर पर एक लाख साल में पहुँच पाता है।

तुमने घर में रोटी बनती हुई देखी होगी। आग पर सँकते समय रोटी फूल जाती है। हमारा ताराविश्व विलकुल उसी फूली हुई रोटी जैसा है। इसके केन्द्र की मोटाई 20,000 प्रकाश वर्ष है। यानी बीस हजार प्रकाश वर्ष में प्रकाश जिसने किलोमीटर जाएगा, उतने ही किलोमीटर मोटा यह ताराविश्व है।

इसी समय तुम्हें एक दूसरी बात बताना दूँ। हमारा सूर्य ताराविश्व के बीचोंबीच नहीं है। वह ऐसी जगह पर है जहाँ से ताराविश्व का एक छोर तो 17,000 प्रकाश वर्ष दूर है और दूसरा छोर 83,000 प्रकाश वर्ष दूर है।

दूर-दूर तक फैले हुए इस लम्बे-चौड़े ताराविश्व में हजार-दस हजार या लाख-दस लाख नहीं, करीब सौ आठ तारे हैं। लेकिन ताराविश्व इतना बड़ा है और उसमें ते तारे इतने दूर-दूर तक फैले हैं कि हम सारे तारों को नहीं देख पाते। जितने तारों को हम आसानी से देख लेते हैं, करीब 9,000 हैं।

इन तारों में कई तारे बहुत छोटे हैं। कितने ही तारे एकदम सूर्य के बराबर हैं—यानी करीब-करीब उतने ही लम्बे-चौड़े और गरम। सूर्य के बावजूद तारा हमारे सबसे नजदीक है, उसका नाम है 'जय'। यह भी सूर्य जैसा ही है, लेकिन हमें एक नन्ही-गी बिन्दी की तरह दिखाई पड़ता है। इसका कारण यह है कि 'जय' तारा हमसे बहुत दूर है। जानते हो कितनी दूर? सवा चार प्रकाश वर्ष—यानी जितनी दूर सूर्य है, 2,70,000 गुना दूर।

अगर 'जय' को सूर्य की जगह रख दिया जाए तो वह भी सूर्य जितना गरम और चमकदार दिखेगा न? सूर्य को यदि 'जय' के स्थान पर रख दिया जाए तो वह भी हमें एक बिन्दी की तरह दिखाई पड़ेगा।

यह तो हुई बराबरी की बात। लेकिन आकाश में कितने ही ऐसे तारे हैं जो सूर्य से भी बड़ा गरम और चमकदार हैं। गनीमत है कि ये तारे हमारी पृथ्वी से बहुत दूर हैं। अगर ये अपनी दूरी से आधी दूरी पर भी आ जायें तो शायद हम पलक झपकते झुलम कर मर जायें। उनके तेज का अन्दाजा इसी बात से लगा लो कि जो तारे हम बहुत ही फीकी रोशनी के धुँधले-से लगते हैं, उनमें से भी कई तारे हमारे सूर्य से तीस-तीन गुना बड़े हैं।

ऐसे ही एक तारे का नाम 'लुब्धक' है। 'लुब्धक' हमारे ताराविश्व का सबसे चमकीला तारा है। वह सूर्य से करीब 25 गुना ज्यादा गरम और चमकदार है। अगर सूर्य की जगह 'लुब्धक' होता तो यह गरमी और रोशनी भी 25 गुना होती। तब तो हमारा पल भर भी जीना मुश्किल हो जाता। लेकिन 'लुब्धक' तारा हमसे 8.7 प्रकाश वर्ष दूर है। दूसरी तरह से कहें तो वह 'जय' तारे से भी दुगुनी दूरी पर है, इतना ही वह भी हमें एक छोटी-सी बिन्दी की तरह टिमटिमाता दिखाई पड़ता है।

इस टिमटिमाने वाले 'लुब्धक' तारे को ही अगर हम एक नम्बर का तारा मानें तब भी इसके सामने 'सूर्य' और 'जय' तारे एकदम सातवें नम्बर पर आते हैं। यानी ताराविश्व में 'लुब्धक' और उसके जैसे ही तेजवान तारों को न गिनें, तब भी बहुत-से ऐसे तारे हैं जो 'लुब्धक' से भले ही छोटे और कम चमकीले हों लेकिन सूर्य से कई गुना बड़े, गरम और चमकदार हैं।

वैसे ज्यादा तेजवान और चमकदार तारा यकेला 'लुब्धक' ही नहीं है। सैकड़ों और तारे ऐसे हैं जो उसी के बराबर या उससे भी बड़-चढ़कर हैं। उनकी रोशनी और गरमी सूर्य से दस-दस, बीस-बीस हजार गुनी ज्यादा है। मृगशिरा मण्डल का बाणराज तारा और हंसमण्डल का हंसपुच्छ तारा तो सूर्य से 50 हजार गुना चमकीले हैं। यह दूसरी बात है कि वे हमसे इतनी दूर हैं कि हम लोगों को तो हम नंगी आँखों से देख भी नहीं पाते।

अब तुम खुद ही सोच लो कि इतने तेजवान तारों के सामने बेचारे सूर्य की क्या औकत है? इसकी स्थिति तो कुछ ऐसी ही समझ लो—छुने आसमान के नीचे दोपहर की कड़कड़ाती धूप में मानो छोटी-सी मोमबत्ती जला दी गई हो।

इसके साथ ही हमें यह भी पता चल गया कि हमारे ताराविश्व में एक ही नहीं, अनेक सूर्य हैं। उनमें से कई तो हमारे सूर्य के बराबर ही हैं और कितने ही इससे भी कई-कई गुना बड़े। लेकिन वे अनेक सूर्य हमसे इतनी दूर हैं कि हम उनमें से कितनों को तो देख ही नहीं पाते; जिन्हें देखते हैं, वे भी अपनी अपार दूरी की वजह से छोटी-छोटी बिन्दियों की तरह टिमटिमाते हुए दिखाई पड़ते हैं।

उन सूर्यों के बारे में हमें अभी ज्यादा जानकारी नहीं है। फिर हमारा काम तो हमारे ही सूर्य से पड़ता है, इसलिए हम इसी के बारे में बातें करेंगे। दूसरे सूर्यों के बारे में हमें इतना ही जान लेना काफी होगा कि उनमें से हजारों सूर्य इतने बड़े-बड़े हैं कि उनके सामने हमारा सूर्य तारा एकदम नन्हा-मुन्ना बच्चा जैसा लगता है।

तुम्हें ताज्जुब हो रहा होगा कि आग के गोले की तरह चमकदार दीखने वाला सूर्य एक नन्हा-मुन्ना तारा है?

हां, है तो ताज्जुब की ही बात। हम एक बार फिर से हिसाब लगाएं—क्या सूर्य सचमुच नन्हा-सा है? आओ, जरा नाप-तोलकर देखें तो सही—आखिर हमारा सूर्य कितना बड़ा है? कितना भारी है?

डा० उर्मिलेश की दो गजलें

□ पप्पू फीचर्स

(1)

वो जो सूरज उगाने वाला था।
हां उसे तीरगी ने पाला था ॥
उसकी कल हाट में लगी बोली।
जिमका बस्ती में बोल वाला था ॥
जो मुझे तेरे पास लाया है।
वो न मस्जिद न वो शिवाला था ॥
अब निगाहों पे कितने ताले हैं।
पहले होंठों पे एक ताला था ॥
बोई मुझ-सा नहीं था महफिल में।
कोई गोरा तो कोई काला था ॥
मेरे गिरने पे हंस रहा है वो।
मैंने गिरकर जिसे संभाला था ॥

मेरे घर में आग लग रही थी जब।
उसके घर में हो रहा उजाला था ॥

(2)

तुझको मुझसे लड़ा गई रोटी।
अपनी ताकत दिखा गई रोटी ॥
मैंने जीरो की शकल खींची थी।
याद बच्चे को आ गई रोटी ॥
पेट की शकल में ढली आंखें।
पुतलियों में समा गई रोटी ॥
लोग खाने थे रोटियां कल तक।
आज लोगों को खा गई रोटी ॥
एक उम्दा गजल के धोखे में।
हमसे क्या-क्या लिखा गई रोटी ॥

ज्योतिष चन्द्रिका : सितम्बर 89/28

स्वप्न

स्वप्न क्या है? इस सम्बन्ध में कहा जाता है कि हमारी तीन अवस्थाएँ होती हैं। जागृत, स्वप्न और सुषुप्ति।

हम पूर्णतया बोधयुक्त होकर क्रियाशील रहते हैं उसे जाग्रत कहते हैं। यह क्रियाशीलता देह की तो होती ही है। जो दृश्य रहनी है किन्तु देह को शब्द स्वर करने पर भी हम मन से चिन्तनशील बने रह सकते हैं। वह भी जाग्रत अवस्था ही होती है। सुषुप्ति सोने को कहते हैं, जिसे निद्रा के नाम से जाना जाता है। सोने और जागने के बीच की स्थिति को स्वप्न कहा जाता है। बीच की इसलिए कि इसमें बाहर से देह के स्तर पर निद्रा की-सी निश्चलता होती है, किन्तु मानसिक स्तर पर हलचल होती रहती है। कलना का केन्द्रभूत मन शान्त नहीं होता। वह अन्तर्मुखी वृत्तियों को सक्रिय बनाये रखता है।

स्वप्न को समझने के लिए निद्रा को समझ लिया जाय। निद्रा क्या है? निद्रा एक तमोगुणी प्रणालि है। हमारे देह में तमोगुण की अधिकता से निद्रा आती है। लोग कहते हैं—अन्न का नशा आता है। अन्न यथार्थ में दोस पदार्थ है और दोसपना पृथ्वी तत्त्व का बाह्य गुण है। पृथ्वी तमोगुणी होने के कारण अन्न निद्रा का कारण बनता है। जो लोग अन्न बिहीन भोजन करते हैं उनको निद्रा भी कम आती है और जो अनाज के पात्र हैं वे जितना खाते हैं उतना ही सोते हैं।

तमोगुण की अधिकता से मन सुषुप्ता में प्रवेश कर जाता है और इस अन्तर्हित स्थिति को ही निद्रा कहा जाता है। मन के निवृत्त हो जाने पर अर्थात् निद्रित अवस्था में हमारे देह की मारी क्रियाएँ यथावत् चलती रहती हैं। ध्यान-संस्थान, पावन-संस्थान, रक्त-संचार आदि दैहिक व्यापार यथावत् चलते रहते हैं। ये सारे संस्थान स्वचालित हैं और इनका सम्बन्ध मन से न होकर देह में स्थित पट्टाओं से है। इस सबके बावजूद भी ऐसा नहीं है कि मन इस देह की क्रिया या आवश्यकता या तारतम्य बनाये रखने के दायित्व से मुक्त हो जाता है। आवश्यकता पड़ने पर ऐन्द्रिय-बोध मन को वर्तुणी बना देता है। निद्रा में मच्छर काटने पर खुजाना या प्यास लगने से चेत हो जाना जैसी क्रियाएँ इस बात से सूचित हैं कि ऐन्द्रिय बोध के दायित्व से मन मुक्त नहीं होता और निद्रा एक प्रकार से विश्रान्तिकाल से अधिक नहीं होती।

निद्रा तमोगुण है और पृथ्वी तमोगुण का स्थूल प्रतीक है। इसलिए निद्रा से व्यक्त की स्थूलता और पुष्टता होती है। पृथ्वी पाँचों तत्त्वों में सघन एवं दोस रहने के कारण निद्रा जैसे तमोगुणी प्रणालि में अवकाश प्राप्त करती है, शिवांगतः निद्रालु व्यक्ति पहलवान न भी हो तो भी शारीरिक दृष्टि से पुष्ट होता है। शरीर की इस स्थूलता में अन्तर्मय अश्रित सक्रिय होता है और अन्तर्मयता देह को खाती है। इसलिए योग और साधना-मार्ग में स्थूल देह वजित एवं निरुत माना गया है। जब कभी बाह्य दवायों अथवा ऐन्द्रिय ग्रन्थियों में आने वाले तनाव के कारण स्वप्न आता है तो मन उन ग्रन्थियों की वास्तविक पूर्ति किया करता है जैसे कोई भूखा आदमी स्वप्न में विविध प्रकार के व्यंजनों का स्वाद लिया करता है अथवा प्यासा व्यक्ति घड़े-मुराही या अन्य जल पात्रों को ढूँढ़ता रहता है।

यथार्थ रूप में मन और प्राण हमारे इन्द्रिय सङ्घ और देह रूपी नगर के संरक्षक हैं। एक देह की बाह्य अवस्था को सक्रिय शुद्ध रखता है, देह में अवस्थित छोटी-से-छोटी बोधिका को प्रीणित-आप्यायित करता है। दूसरा का संचालन करता है। जैसे किसी नगर में स्थापित जलदायि विभाग की नाइन को साफ-सुवरा और हर गली-मुहल्ले तक पहुँचाने का काम करने वाले इंजीनियर और उस जल वितरण पर प्रशासनिक विधि से नियन्त्रण करने वाले अधिकारी के अधिकार एवं कार्य होते हैं वैसे ही व्यवस्था प्राण और मन की हुआ करती है। प्राण है दायुतत्व ही

किन्तु उसमें रजोगुण की प्रमुखता होती है और मन सकल गुणों का अधिष्ठाता होने के कारण तीनों सेनाओं के सेनापति जैसा आचरण करता है। इसके दोनों ही काम हैं—यह अपने अधीनस्थ इन्द्रिय गुणों से काम भी लेता है और उनकी एक सीमा तक रक्षा भी करता है। जैसे हमारी आँख में कोई चीज गिरने को होती है तो पलकें मूंद जाती हैं अथवा पेट में कोई अनपेक्षित विपरीत वस्तु चली जाती है तो उसको वमन करके बाहर निकाल देता जैसी व्यवस्था मन के अधिनारक कार्य हैं।

तेन्द्रिय आग्रहों से आने वाले स्वप्न अर्थ होते हैं, वे एक प्रकार के दबाव के उपलक्षण होते हैं इनके अलावा, दोषाश्रित हमारे शरीर में प्रवर्तमान दोषों में तीव्रता या मन्दता के कारण भी स्वप्न आते हैं। जैसे प्राकृतिक रूप से वर्षा ऋतु में हमारे शरीर में वात दोष कुपित होता है। शरद ऋतु में पित्त प्रवृत्त और वसन्त ऋतु में कफ प्रवृत्त होता है। आयुर्वेद की दृष्टि से सभी धातुओं की समान अवस्था हमारे स्वस्थ होने का चिह्न है। पर इस समानता में भी एक दोष मन्द, एक उपचीयमान अथवा संचयी और एक प्रवृत्त अवस्था में हुआ करता है। हमारे बाह्य विहार में अथवा वैचारिक रूप में कोई इस प्रकार का परिवर्तन हो जाय कि उसके दोषों के ऋतु क्रम के अनुसार होने वाली प्रवृत्तता व मन्दता में कोई व्यतिक्रम हो जाय अथवा इसी क्रम में कोई दोष अधिक प्रवृत्त हो जाय तो भी स्वप्न आते हैं और ये स्वप्न यथार्थतः एक प्रकार के सूचना होते हैं कि हमारे देह में अमुक दोष अधिक बलवान हो गया है जिसे हम आहार अथवा अन्य कोई वस्तु प्रयोग में लेकर सन्तुलित कर सकते हैं। जैसे स्वप्न में पानी के तालाब, बाढ़ या हरे-भरे बाग-बगीचे दिखाना कफ की प्रवृत्तता के सूचक हैं तो हवा में उड़ना, ऊँचे-ऊँचे पहाड़ों, कन्दरा व प्राचीन खण्डहरों का देखना वात दोष की प्रखरता और आग लगना या पीले रंग के पदार्थों का देखना पित्त की प्रवृत्तता के कारण होता है।

योग सूत्र की व्याख्या में कहा गया है कि तीन प्रकार के स्वप्न होते हैं। तमोगुणी स्वप्न असंगत और ऊल-जलूल किस्म के होते हैं, जिन्हें जंजाल कहा जाता है ये आते हैं और याद नहीं रहते। रजोगुणी स्वप्न कुछ संगत होते हैं, इनमें हमारे जागतिक आग्रह और जात विषयों का यथेच्छ संयोजन रहा करता है। ये समग्रतः अथवा यत्किंचिन् रूप में याद रहा करते हैं। तात्त्विक स्वप्न संगत स्वप्न होते हैं। हिमाद्रि जैसे अगुणत, हिमालय पर्वत का दर्शन, विषय एवं अत्यन्त रमणीक शुभ्र नगरों, भवनों या उद्यान उपवनों के दृश्य, देवमूर्ति-विमान, सूर्योदय आदि को देखना अथवा भावी घटनाओं को यथातथ रूप में घटते हुए देखना जैसे स्वप्न उत्तम वा सात्त्विक स्वप्न होते हैं और ये व्यक्ति को याद रहते हैं।

पश्चिम के दार्शनिक फ्रायड का मानना है कि स्वप्न हमारी दमित वामसनाओं की तुष्टि होते हैं। व्यावहारिक जीवन में हम जिन कामनाओं को पूर्ण नहीं कर पाते स्वप्न में उन्हें पूरा करते हैं। जैसे कोई व्यक्ति अपनी प्रेमिका से शारीरिक स्तर पर नहीं मिल पाता वह स्वप्न में उससे मिल लिया करता है। स्वप्न जैसे विस्तृत विषय को मात्र दमित वासनाओं की तुष्टि का सूचक कह देना पर्याप्त नहीं है। दमित वासना के कारण जो स्वप्न आते हैं वे रजोगुणी या ऐन्द्रिय बोध की उग्रता के कारण आने वाले स्वप्न होते हैं। क्या फ्रायड ने अपने देश और युग में ऐसे स्वप्नों के विषय में नहीं गुना जो भविष्यत् के यथार्थ दर्शन रहे थे? क्या ऐसे स्वप्नों के सम्बन्ध में वह दिल्कुल अनजान था जिन्हें जंजाल कहते हैं? अस्तु। फ्रायड का दर्शन एक विचार है, निर्णय नहीं क्योंकि निर्णय किसी भी विषय का सम्यक् विवेचन करने के पश्चात् ही किया जाता है, एकांगी नहीं।

कुछ स्वप्न ऐसे होते हैं जो व्यक्ति को निरन्तर आते रहते हैं तो कुछ ऐसे होते हैं जिसका इस जीवन से सम्बन्ध ही नहीं होता। यह निश्चित है कि मन कल्पना किया करता है, किन्तु उस कल्पना में ज्ञान एक मूलभूत आधार होता है। समानान्तर अथवा विकसित कल्पना हो सकती है किन्तु अज्ञान की कल्पना नहीं हो सकती और यह तथ्य सत्य व तर्कसंगत बात है कि ज्ञान का क्षेत्र अनुभव ने बड़ा होता है। व्यवहार में भी ज्ञान बुद्धि का विषय है और अनुभव मन का। जिस व्यक्ति ने पशु देखा है वह पशु को समानान्तर या विकसित कल्पना कर सकता है, जो पशु को जानता ही नहीं

वह उसकी कल्पना भी नहीं कर सकता।

स्वप्नशास्त्र का अध्येता यह मानता है कि स्वप्न एक कार्य है इसलिए उसके पीछे कारण अवश्य रहा है और स्वप्न जब कार्य है तो उसका कोई-न-कोई अर्थ अवश्य रहता है।

अनेक बार हम ऐसे स्वप्न देखते हैं कि उनमें देखे गये दृश्य हमने इस जन्म में नहीं देखे, अथवा ऐसे प्रदेश व स्थान देखते हैं जिनके बारे में कभी कल्पना भी नहीं की थी। आखिर इन स्वप्नों का आधार क्या है? ऐसे कौन से कारण हैं जो इस प्रकार के स्वप्नों की परिणति प्रदान करते हैं?

इस प्रश्न के त्रिवेचन में प्रथमतः यह मान लिया जाता है कि मन की कल्पनाशीलता की परिसीमा बहुत व्यापक है। इसलिए वह अपने इस देह यात्रा में प्राप्त अनुभवों को ही इतने प्रकार से संयोजित कर सकता है कि वे हमें चौंकाने वाले लगें। इसके अलावा मन प्रकाश से भी तीव्रगति से चलने की क्षमता रखता है। इसलिए वह वर्तमान ही नहीं भूतकाल और भविष्यकाल में भी अवाधगति से गमन कर सकता है। वेद की ऋचाओं में "यज्जाग्रतो दूर मुदेति देवं तदु सुप्तस्य तथैवेति दूरगमं ज्योतिषां ज्योतिरेकं तन्मे मनः शिव संकल्पनस्तु"

"देवेन भूतं भानं भविष्यत्परिगृहीतम-मृतेन सर्वम्"

मन की कालतिगामी शक्ति का वर्णन किया गया है और इस विलक्षण शक्ति से सम्पन्न होने के कारण वह किसी भी कालखण्ड में अवाध रूप से गमन कर सकता है। इसके अलावा एक बात और है कि हमारी आत्मा के यात्रा प्रवाह में देह ही बाधक रहते हैं, ज्ञान और अनुभव व चेतना तथा इसके उपकरण भूत अन्तःकरण नहीं बदलता और उस अन्तःकरण में अत्यन्त तीव्रता से अनुभव की गयी घटना व स्थान सर्वथा विलुप्त इतनी जल्दी नहीं होते। सात जन्म तक की घटनाएँ मन के लिए सरलता से स्मृतिग्राह्य होती हैं। इन घटनाओं का पुनर्दर्शन सम्भव है। यद्यपि देह यात्रा में व्यक्ति एक सीमित क्षेत्र में ही देहन्तरण करके विचरता रहता है, क्रियेय परिस्थिति में ही हजारों मील का अन्तर पड़ता है; समुद्र पार के देश में जन्म लेने की घटना तो अति विशिष्ट परिस्थिति में ही सम्भव होती है। मेरी पुत्री वसुधा बचपन में जब वह बोलना सीख ही रही थी, बाबूजी च, जैसे बोला करती थी। इस प्रकार च का प्रयोग महाराष्ट्र में करते हैं। बाद में अनुसंधान करने पर पता चला कि उसकी पूर्व देह महाराष्ट्र की थी।

जयपुर में जब राजस्थान विश्वविद्यालय में परा मनो-विज्ञान का विषय प्रारम्भ किया गया था तब एक महिला आयी थी। वह स्वप्न में ऊँचे-ऊँचे शिखरों वाले मन्दिर देखा करती थी जब कि उसके देश में ऐसे मन्दिर कहीं थे ही नहीं। वह बड़ी ही गंभीर, स्वप्न आते रहे। एक बार जब उसने भारत की भारत की चित्रावली देखी और उसमें दक्षिण भारत के गोपुरम् देखे तो पहचान गयी कि ऐसे ही मकान वह देखती रही है। जब भारत आयी तो दक्षिण के एक मन्दिर में वह इस प्रकार प्रभूती रही जैसे वह वहाँ बसो रही है।

ये घटनाएँ भुषुम्ना की शक्ति के कारण प्रकाशित हो जाती हैं। स्वप्न त्रिद्वि के कारण हमें भविष्यत् को जानने के लिए जो स्वप्न होते हैं उनमें भी मन ही कारण बनता है क्योंकि प्रकाश के रूप में व्याप्त अथवा परिमेय जिस काल को हम जानते हैं, उसमें तीव्र गति केवल मन की हो सकती है। बुद्धि निर्णायक है, वह कालजयी अतएव काल की रहस्यवेत्त है। काल अथवा दिग् उसको व्याहृत नहीं कर सकते। वास्तविक जैसी शक्ति बुद्धि में प्रकट होती है। बुद्धि का कार्यज्ञान है और उसकी उदात्त अवस्था में अर्थ एवं शब्द अभिन्न रूप में अवस्थित रहते हैं।

स्वप्न त्रिद्वि ज्ञान प्रयोग मंत्र के जप के कारण मन पर लगे दाहरी दवाओं को हटाकर दिशा विशेष में वेक्षण कर दिशा करते हैं और वाग्रहमुक्त मन अपनी स्वाभाविक विलक्षणता अतएव तीव्रतर गति से भावी का परिधान कर लेता है।

क्या हों या हमारे परिचितों को ऐसे स्वप्न नहीं आये जो भविष्य का अविकल दर्शन रहे हैं? बिना किसी अविकल प्रकार की साधना के भी कुछ लोग ऐसे होते हैं जिनको ऐसे स्वप्न आ जाते हैं। कई—बहुत कम लोग ऐसे भी हैं

जिनको नैसर्गिक रूप से विजयन होते हैं। दे किसी भी व्यक्ति या घटना के बारे में विजयन देख लेते हैं और भविष्य ज्ञान कर सकते हैं।

जिन लोगों को कजली चढ़ाते हैं या दीपक की ली में विजयन या भविष्यत् की बात देखने को कहा जाता है, उसके मन को भी केन्द्रित किया जाता है। सम्मोहन अपना विषय साधन करने जैसी पद्धति ही वहाँ भी काम में ला जाती है। प्रायः कजली चढ़ाने या हाजरात के प्रयोग में छोटे बच्चों को ही साधन बनाया जाता है क्योंकि उनके मन पर राग-द्वेष जैसी प्रवृत्तियों का भार एवं कल्पन नहीं चढ़ा रहता और वे आसानी से सम्मोहित हो जाते हैं। सम्मोहित अवस्था में मन को केन्द्रित करके उसे अपेक्षित गति दी जा सकती है और मनचाही दिशा में अथवा विषय पर केन्द्रित किया जा सकता है। इसीलिए हाजरात के प्रयोग में अनेक बार आश्चर्यजनक दृश्य देखे जाते हैं और एक सीमा तक (यह सीमा पात्र की क्षमता और योग्यता पर निर्भर करती है तदनुसार) भूत या भविष्यत् की घटनाओं का विवरण जान लिया जाता है।

स्वप्नों की इस रहस्यमयता के पीछे कारण होता ही है और उस कारण के अनुसार ही स्वप्न का फल कथन करने के सूत्र हमारे शास्त्रों में वर्णित है।

स्वप्न शास्त्र में भविष्यत् घटनाओं को घटित होते देखने वाले स्वप्नों को विचारणीय नहीं माना है। ऐसे स्वप्नों के सम्बन्ध में केवल योगशास्त्र ही कहता है। स्वप्न शास्त्र प्रतीक दर्शन का फल बताता है। हमारे स्वास्थ्य, सम्पत्ति, परिवार, व्यवसाय, आध्यात्म साधन आदि विषयों में निकटस्थ भविष्यत् के संकेत मानस पटल पर अंकित हो जाते हैं। जिन्हें हम स्वप्न में देख लिया करते हैं और स्वप्नज्ञ व्यक्ति से उनका रहस्य पूछते हैं।

स्वप्न काल

शास्त्रीय दृष्टि से रात्रि के प्रथम प्रहर में आने वाले स्वप्न अशुद्ध स्वप्न होते हैं, या तो उनका फल मिलता ही नहीं और मिलता भी है तो बहुत क्लिप्त से मिलता है। ऐसी ही स्थिति दूसरे प्रहर में आने वाले स्वप्नों की भी होती है। तीसरे प्रहर के अन्त में अथवा चौथे प्रहर में आये स्वप्न सदैव फल देने वाले होते हैं।

शुभ अथवा अशुभ स्वप्न

स्वप्न शुभ सूचक भी होते हैं और अशुभ सूचक भी। सौभाग्य से शुभ स्वप्न देखते हैं तो देखने के बाद जैसे ही जगते हैं, जग जाना चाहिए और फिर सोना नहीं चाहिए तथा ऐसे स्वप्नों को किसी विज्ञ व्यक्ति को अथवा गुरु ही को कहना चाहिए, अन्य लोगों को नहीं। अनेक बार ऐसा हुआ है कि शुभ स्वप्न चाहे जहाँ और चाहे जिस व्यक्ति के सामने कहने से वे स्वप्न ही आने बन्द हो जाते हैं। हाँ, गुरु से कोई पर्दा नहीं रखा जाता और उनके कहने से ऐसा नहीं होता।

अशुभ स्वप्नों के सम्बन्ध में इससे विपरीत व्यवस्था है। अशुभ स्वप्न देखकर व्यक्ति को सो जाना चाहिए और उसको अधिक-से-अधिक व्यक्तियों को कहना चाहिए। यदि घोर अशुभ सूचक दुःस्वप्न देखता है तो उसके दुष्प्रभाव की शान्ति के लिए दान, पुण्य, अनुष्ठान करना चाहिए, ऐसी शास्त्रों की व्यवस्था है।

महत्वपूर्ण स्वप्न

स्वप्न शास्त्रियों के मत में सुने हुए, अनुभव किये हुए, इनके समान, देखे हुए, चिन्ता, स्वप्न देखने की सहज प्रकृति, शारीरिक अथवा मानसिक उद्वेग के कारण जो स्वप्न आते हैं वे विशेष रूप से विचारणीय नहीं होते, क्योंकि

शंकराचार्य मन्दिर

शंकराचार्य पर्वत श्रीनगर से 305 मीटर (1000 फीट) की ऊँचाई पर है। श्रीनगर का यह दर्शनीय स्थल है। इतिहासकारों के विचार से यह शिव मन्दिर संविमान ने 2629, 2564 ईसा पूर्व में बनाया था। उस समय यहाँ तीन सौ सोने की मूर्तियाँ थीं। गोपादित्य ने 426, 36 ईसा पूर्व इसकी गरम्मत कराधी और 699, 736 ई० में ललिता-दित्य ने इसका जीर्णोद्धार किया। कुछ का अनुमान है कि पुराने मन्दिर के स्थान पर यह नवीन मन्दिर राजा गोपादित्य ने बनाया। जिस समय हिन्दू तथा बौद्ध धर्म में संघर्ष चल रहा था तो शंकराचार्य काश्मीर बौद्धों से वाद-विवाद में उन्हें नीचा दिखाने आये थे। इसी कारण बौद्ध इस पर्वत को मानते हैं और पाण पहाड़ कहते हैं, तथा मुसलमान इसे तल्ले सुलेमान कहते हैं। इस पर्वत पर से काश्मीर घाटी तथा श्रीनगर का अवलोकन किया जाता है।

तिरुकलुकुण्डम्

मन्नास से तीस मील दूर स्थित छोटे से ग्राम तिरुकलुकुण्डम् में पर्वतीय चट्टान पर प्राकृतिक सौन्दर्य से भरे-पूर वातावरण में जलकुण्ड के निकट ही एक मन्दिर है, उसमें से एक त्रिकुण्ड एवं शिखा-यसोपवीत धारी केवल एक वस्त्र धारण किये हाथों में एक पात्र में प्रसाद लिये पुजारी बाहर आकर एक चट्टान पर पालथी मारकर बैठ जाते हैं।

दोपहर के ठीक बारह बजे आकाश से दो पक्षी घूमते हुए आते हैं, कुण्ड के जल में अपने पंख व चोंच को धोते हैं, पंख पड़फड़ाकर पानी छिड़कते हैं और स्नान कर पुजारी के निकट आ बैठते हैं।

पुजारी भी पात्र में नीठे चावलों के गोले बनाकर अपनी हथेली पर रखकर उन्हीं खिलाता है। पेट भरने पर वे चले जाते हैं और चारों ओर खड़ी भक्तों की भीड़ जब 'प्रसादम्' को पाने के लिए पुजारी के पास उमड़पड़ती है।

पक्षी उड़कर 'रामेश्वरम्' पहुँच जाते हैं।

किंवदन्ती है कि यहाँ से सामंजस्य को काशी चले जाते हैं और फिर अपने दिव्य उन्नत मन्दिर में ठीक बारह बजे वही सब कुछ होता है, जो ऊपर वर्णित है।

यह कम न जानें कब से चला आ रहा है। कहते हैं कि यह दोनों पक्षी कोईशा तमसः रूपि है। सापसोचन के लिए इन्हें नित्य यह लम्बी यात्रा करनी पड़ती है।

ज्योतिष चन्द्रिका : सितम्बर 89/33

प्रभु का सामीप्य

□ ज्योतिष चन्द्रिका

जब कोई विवेकी पुरुष प्रभु-परायण होकर संसार में विचरता है और होना न होना ईश्वराज्ञा में देखता है उस समय उसका प्रत्येक कर्म दूसरों के हित के लिए, उसका हर संकल्प दूसरों के सुख हेतु और उसका हर निश्चय प्रभु-अर्पण ही होता है। इसलिए वह विवेकी पुरुष हर समय ईश्वर को अपने समीप अनुभव करता है।

जब कोई सुशील पुरुष दूसरों के दुःख को अपना दुःख, दूसरों के हितों को अपना हित और दूसरों के कार्य को अपना कार्य अनुभव करता है उस समय ईश्वर उसके हृदय में विराजमान रहते हैं और वह भी ईश्वर को अपने निकट ही अनुभव करता है।

जब कोई मजदूर दिन-भर काम कर थककर घर लौटता है और सायं चार पैसे बचाकर उसका आटा-दाल खरीदकर आने भूखे बीबी-बच्चों को खिलाता है, उस समय वह ऐसा अनुभव करता है जैसे वह भगवान को भाग लगा रहा हो। उसका परिवार भी भगवान का बार-बार धन्यवाद करता है कि हे प्रभु तू कितना दयालु है जो रात्रि होने से पूर्व ही हमारी उदर-पूर्ति के लिए पूरा सामान भेज देता है। मानो मजदूर और उसका परिवार दिन भर भगवान का स्मरण करके सायंकाल को उसका धन्यवाद करते हैं और फिर प्रातःकाल उठकर उसका आश्रय लेकर काम-काज में जुट जाते हैं। इस प्रकार वह दयालु प्रभु उतना ही समीप होता है जितना वे उसे अपने समीप अनुभव करते हैं।

जब कोई पापी संतसंग में जाकर अपने पिछले पापों को प्रायश्चित्त करता है और आगे के लिए उस समय उसका मन इतना निर्मल होता है जितना किसी भगवान के भक्त का। इसलिए ऐसे शुभ अवसर पर प्रभु उसके अत्यंत निकट होते हैं।

जब कोई साधारण मनुष्य किसी सत्पुरुष के संसर्ग में आकर भगवान की चर्चा सुनता है, सत् पुरुष के क्रियात्मक जीवन में भगवान के गुणों की झलक देखता है उस समय वह भगवान को अपने मन-मंदिर में ऐसा अनुभव करता है जैसे मणि युक्त गर्प मणि को अपने मस्तक में। वह भगवान को अपने अन्दर और बाहर ऐसे ही अनुभव करता है जैसे मणि युक्त सर्प अपनी इच्छानुसार कभी मणि को बाहर निकालकर और कभी मणि को अपने मस्तक में छुआकर। तात्पर्य यह कि जिस प्रकार सर्प की सुरति हर समय अपनी मणि में लगी रहती है उसी प्रकार सत्पुरुष की संगति में बैठनेवाले मनुष्य की सुरति भगवान में लीन रहती है। जब कोई निरपराधी गलती से फाँसी की सजा पाकर फाँसी के तख्ते पर लटकाया जाता है उस समय जितना वह भगवान को अपने समीप अनुभव करता है उतना शापद कोई योगी भी न अनुभव करता है। इसलिए प्रत्येक मनुष्य किसी न किसी समय प्रभु को अपने निकटतम अवश्य अनुभव करता है और यह वह समय होता है जब वह मनुष्य अपने पिछले पापों का प्रायश्चित्त कर आगे के लिए कभी व्रमा न करने की मोहग्र-खाता है। तब वह भगवान की याद में इतना लीन हो जाता है कि यदि वह इस निर्मल वृत्ति को चिरकाल तक जारी रख सके तो भगवान उसे हर समय अपने हृदय-मंदिर में ही विराजमान नजर आवे और प्रत्येक प्राणी उसे प्रभु का ही रूप दिखाई दे। अतः कोई व्यक्ति भगवान से दूर नहीं। अपने पिछले कर्मों द्वारा और अपनी वर्तमान वृत्ति द्वारा ही वह भगवान को अपने से दूर पाता है। अन्यथा सेवा और त्याग की भावनाओं में भगवान इतने समीप अनुभव होने लगते हैं जितने कि वह वास्तव में हैं। इसलिए भगवान के सामीप्य को अनुभव करनेवाला निर्मल विवेकशील पुरुष अभिवादन के योग्य है और जनता को जनार्दन के रूप में देखनेवाला प्रत्येक व्यक्ति स्तुत्य है क्योंकि उसी ने सेवा, त्याग एवं वैराग्य की भावनाओं से भगवान की नजदीकी अनुभव की है और हर समय उसकी वृत्ति में भगवान विद्यमान रहते हैं।

इसलिए धन्य हैं वे सीमाशाली पुरुष जो भगवान का हर समय महिमा गान करते हुए, उसकी सेवा को अपनी मुख्य सेवा समझते हुए और उसके सद्गुणों का ध्यान करते हुए अपने जीवन को गुणवान बनाने में तत्पर रहते हैं और अपना अन्तिम श्वास उसके नाम पर छोड़ते हैं। निश्चय ही भगवान ऐसे लोगों के निकटतम होते हैं। □

जीवन के दौराहे पर

□ ज्योतिष चन्द्रिका

जीवन वह भूमि है जहाँ पुराने संस्कारों की फसल को काटकर वर्तमान कर्मों की पीध लगाई जाती है। जीवन वह क्षेत्र है जहाँ तमोगुण और सजोगुण का परस्पर मेल और संघर्ष होता है। जीवन वह समय है जहाँ भूत और भविष्य की सीमाएँ आकर मिलती हैं। जीवन वह नगर है जहाँ जन्म-जन्म के बिछड़े साथी आकर मिलते हैं। जीवन वह कारखाना है जहाँ आवश्यकताएँ पलती और जनपती हैं और जहाँ नित्य नई वामनाओं का जन्म होना है। जीवन वह प्रकाश है जिसको पाने की इच्छा प्रकृति के हर पदार्थ अर्थात् जड़ और चेतन सभी को होती है। जीवन वह दीपक है जिसके आस-पास संकल-विकल के परवाने चक्कर काटते रहते हैं। जीवन वह सागर है जिसमें ज्ञान-विज्ञान की नदियाँ आकर मिलती रहती हैं और नित्य नया जीवन पाती हैं। जीवन वह मुद्रावना स्वप्न है जिसको देखने की चाहना हर जीव को रहती है और हजार बार देखकर भी मा नहीं भरता। जीवन वह गम्भीर मुद्रा है जिसमें वृत्तियाँ सदैव लीन होने को लालायित रहती हैं। जीवन वह लक्ष्य है जहाँ पहुँचकर बुद्धि स्थिर हो जाती है और फिर करना-कराना शेष नहीं रह जाता। वस्तुतः जीवन वह अमर तत्व है जिसकी खोज सूक्ष्म तथा स्थूल दोनों प्रकार के प्राणियों को होती है किन्तु स्थूल वृत्तिवाले जीवन के स्थूल रूप को देखकर बार-बार इसको पाने का यत्न करते हैं और इसके नित्य मन को मोहित करनेवाले रूपों को देखकर प्रसन्न होते हैं।

(क्रमः)

ज्वाला ज्योतिष कार्यालय

- मंत्र शक्ति से कष्ट निवारण।
- ज्योतिष सम्बन्धित सम्पूर्ण कार्य।
- शुभ मुहूर्तों में सिद्ध किये गये दुर्लभ मंत्रों का प्राप्ति हेतु।
- अशुभ ग्रहों की शान्ति हेतु यज्ञ, रुद्राक्ष एवं शुद्ध रत्न।
- अनुष्ठान करने वाले विद्वाना का विगण प्रबन्ध है।
- कम्प्यूटर द्वारा जन्मपत्री बनवाने के लिए सम्पर्क करें।

ज्योतिष चन्द्रिका

‘ज्योतिष विभाग’

523, दक्षिणी सिविल लाईन,

मुजफ्फर नगर-251002 (उ० प्र०)

दूरभाष : 8435

फा० बा० न० 47

हरिद्र की सेवा

श्री परिपूर्णानन्द वस

घटना अलीगढ़ की है। सत्य कथा है, कपोलकल्पित नहीं। एक विद्वान् पण्डितजी ने मुझे बतलाया कि एक संध्या जो वे अलीगढ़ की नगरी में एक गान की दुकान पर खड़े थे। एक हृष्ट-पुष्ट ब्राह्मण उनके पास आया। पण्डितजी के सामने हाथ फैलाकर उस ब्राह्मण ने कहा—‘चार पैसे का गुड़ दिला दीजिये।’

पण्डितजी को बुरा लगा। उन्हें विक्रमादित्य तथा कालिदास की कथा याद आ गयी। विक्रम के दरबार नर-बलि करनेवाला एक राक्षस आया। उसने नर-बलि की अनुमति चाही। भला ऐसी आज्ञा कैसे मिल सकती थी? राक्षस ने कहा कि या तो अनुमति दो या मेरे प्रश्न का उत्तर दो—नष्टस्य कान्या गतिः? जो नष्ट हो गया है उसकी क्या गति होगी?’

इस जटिल प्रश्न का उत्तर देने के लिए विक्रम ने सात दिन का समय माँगा। यह भार कालिदास पर पड़ा गया। सातवें दिन प्रातःकाल संध्यावन्दन के समय कालिदास एक भिखारी के वेष में उस कर्मकाण्डी राक्षस के पदों पर पहुँचे और भिक्षा माँगी। राक्षस ने पूजा-पाठ के समय एक हृष्ट-पुष्ट ब्राह्मण को भिक्षा माँगते देखकर उसे पटकना कहा—

‘तुम्हें लज्जा नहीं आती कि इतने हृष्ट-पुष्ट ब्राह्मण होकर प्रातः पूजन के समय भीख माँग रहे हो?’

उस ब्राह्मण ने कहा—‘महाराज! मैं जूआ खेलता हूँ!’

ब्राह्मण और जूआ, धिक्कार है तुम्हें।’

‘जूआ खेलते-खेलते मैं मदिरापान करने लगा।’

‘हे भगवन्! तुम्हारा इतना पतन!’

‘मदिरा पीने से वासना वृत्ति जागी अतएव मैं वेश्या वृत्ति करने लगा हूँ।’

‘ओह! तुम्हारे पतन की सीमा नहीं है।’

‘वेश्या वृत्ति के लिए धन की आवश्यकता होती है। अतएव मैं चोरी करने लगा।’

‘तो फिर तुम ब्राह्मणत्व को बिलकुल खो बैठे?’

‘चोरी, वेश्या वृत्ति, मदिरा, जूआ—मैं दर-दर की ठोकरें खाने लगा।’

‘तब तुम भिखारी बन गये छिः!’ राक्षस ने घृणापूर्वक कहा।

तब भिखारी ब्राह्मण बोला—‘नष्टस्य कान्या गतिः?’

राक्षस को उसके प्रश्न का उत्तर मिल गया। जिस ब्राह्मण का इतना पतन होगा, जो एक क्षण में भिखारी, उसे अतगिनत कुमार्गों पर चलना पड़ेगा। वह नष्ट होकर रहेगा और उसकी अन्य गति क्या होगी? दर की ठोकरें खायेगा।

हमारे विद्वान् पण्डितजी ने सोचा कि ऐसी ही कोई बात इस ब्राह्मण के साथ भी होगी। उन्होंने ब्राह्मण से कहा—‘भाई! तुम हृष्ट-पुष्ट हो। कोई कारोबार करो। भीख माँगना बड़ा भारी पाप है।’

भिखारी ने पण्डितजी के नेत्रों में नेत्र गड़ाकर एक क्षण के लिए देखा फिर वह दृढ़ स्वर से बोला—‘तो गुड़ दिला दीजिये। अन्यथा स्पष्ट उत्तर दीजिए। मैं इसे उपदेश प्रतिदिन सुनता हूँ।’

पण्डितजी को उसकी बातों से ऐसा लगा कि वह अनपढ़ नहीं है। उन्होंने फिर कहा—‘यदि स्वयं नहीं कमा

तुम्हारी संतान तुम्हारा पालन-पोषण क्यों नहीं करती ?

भिखारी ने संतान-भाव से कहा—‘पत्नी, संतान सभी निकम्मे निकल गये। बोलो, गुड़ खिलाते हो या नहीं ?’

अब हमारे विद्वान् मित्र उसकी स्तिर मुद्रा से इतने प्रभावित हो चुके थे कि उन्होंने पैसे निकाले और गुड़ खरीदा। जब तक वह गुड़ खाकर पानी पीता रहा, तब तक वे उसी ओर देखते रहे। पानी पीकर वह आरवस्त हुआ। फिर उसने पण्डितजी से कहा कि कुछ दूर मेरे साथ चलिये। पास में ही एक उद्यान था। वहाँ पहुँचकर वह भिखारी साधुण कुछ क्षण मोन रहा। फिर यकायक उस आशुकि पण्डित भिखारी ने कहा—

विद्या सात्वयिता तथा सुजनता मेवापि च प्रार्थना
पंचैता पणिण्यिरे जगधितुं वित्तात्पजं यततः।
व्यापारं सकलं विहाय नितरां तत्रैव रेमे मुहुः
किं कुर्वे कुटिलाशयेन विधिना पश्चापि वन्द्याः कृताः ॥

‘मैंने अपने जीवन में पाँच विवाह किये। विद्या में मैं पण्डित हो गया। कविता में मैंने अच्छी कविता करना सीख लिया। सुजनता से मैं बड़ा अच्छा जीवन—सदाचारी जीवन बिताने लगा। सेवा से मैंने नौकरी भी की। प्रार्थना में मैंने चाटकारिता तथा प्रार्थना भी बहुत की। इन पाँचों स्त्रियों के साथ मैंने सब काम छोड़कर दत्तचित्त हो रमण किया, पर मैं अपने कुटिल भाग्य को क्या कहूँ कि ये पाँचों स्त्रियाँ वन्द्या निकलीं। इनसे कोई संतान नहीं हुई, जो मेरा पोषण करती। अर्थात् सब कुछ करके मैंने देख लिया। मेरा भाग्य ही साथ नहीं देता। अतएव मैं भीख माँगता फिरता हूँ।’

प्रयत्न या परिश्रम में ही धन की प्राप्ति हो, ऐसा नहीं है। भाग्य बड़ी भारी वस्तु है। इसके एक ही शटके से सब किये-कराये पर पानी फिर जाता है। मनुष्य के जीवन में भाग्य बड़ी भारी वस्तु है। दरिद्रता दुर्भाग्य के कारण भी होती है। अतएव भाग्य के स्वामी भगवान् की शरण में जाना चाहिये।

किंतु धन उगी के पान आता है जो दूसरे के दुर्भाग्य की समझता है, पहचानता है या जानता है। जिसके मन में दूसरे के दुर्भाग्य के प्रति कोई सहानुभूति नहीं, उसका जीवन अन्ततोगत्वा भाग्यशाली नहीं रह सकता। हमारे भाग्य का विधाता दरिद्र एवं दूसरे की दरिद्रता है। जो दरिद्र होता है, वह संसार को सर्वाधिक अच्छी तरह पहचानता है। वह संसार से अधिक परिचित होता है। इसीलिए तो लिखा है—

भो दारिद्र्य नमस्तुभ्यं सिद्धौऽहं त्वत्प्रसादनः।
पश्यामिहं सगत्सर्वं न भो पश्यति कश्चन ॥

‘हे दारिद्र्यदेव ! तुम्हें नमस्कार है। तुम्हारे प्रसाद से मैं सिद्ध हो गया हूँ। मैं दरिद्र हूँ, मेरी ओर कोई नहीं देखता, पर मैं तमारे भर की ओर देख रहा हूँ।’

एक दरिद्र को जब संसार में जीवितों की वस्ती में कहीं सहारा नहीं मिला, तब वह मरने वालों के स्थान—श्मशान पर जा पहुँचा। वहाँ उसने देखा कि एक शव बड़े आराम से लेटा है—विश्राम कर रहा है। उसकी दंत शान्ति तथा सुख को देखकर दरिद्र ने कहा—

उत्तिष्ठ क्षणमेकमुद्वहं गुहं दारिद्र्यभारं सखे
श्रान्तस्तावदहं चिर मरणत्रं सेवे त्वदीयं सुखम्।
इत्युक्तो धनवर्जितेन सहसा गत्वा श्मशानं शवो
दारिद्र्यान्मरणं वरं वरमिति ज्ञात्वाैव तूर्णं स्थितः ॥

ज्योतिष चन्द्रिका : सितम्बर 89/37

‘हे सबे ! जरा एक क्षण के लिए उठकर मेरी दरिद्रता का बोझ सँभाल लो । मैं इसे ढोते-ढोते थक गया हूँ और तुम आराम से सो रहे हो । श्मशान में जब शव ने दरिद्र की यह बात सुनी तो उसने सोचा कि दरिद्रता से कहीं अधिक अच्छा है मर जाना ।’ यह सोचकर वह चुपचाप लेटा ही रहा । उसने दरिद्र की प्रार्थना का कोई उत्तर नहीं दिया ।’

जब दरिद्रता इतनी बुरी वस्तु है तथा दरिद्र का साथी मुर्दा भी नहीं है, तब हम अपने सीमित साधनों में उसकी सहायता तो कर ही सकते हैं । भिखारी हमसे भीख नहीं माँगते आता । वह तो हमें सीख देने आता है कि ‘दो भाई ! दो । दान दो । नहीं दोगे तो हमारे जैसे हो जाओगे’—

भिक्षुका नैव याचन्ति शिष्यन्ति गृहे गृहे ।

देयं देयं पुनर्देयं न देयं फलमीदृशम् ॥

इस संसार में जो कुछ प्रकाश है वह धनी तथा समृद्ध की ज्योति से नहीं, पीड़ित तथा परित्यक्त की ज्योति से है । यदि अन्धकार से प्रकाश में आना है तो दरिद्र की आत्मा को पहचानना होगा ।

क्या खबर सितम नवाज वे-खबर जहान को ।

दिल जलों की आह से हो रही है रोशनी ॥

मृत्यु एक निश्चित सत्य है । अमीर हो या गरीब मरना सभी को है । यदि मरना निश्चित है तो फिर धन की गठरी भी क्या काम देगी । धन-संचय करने वाले ने यदि केवल उसका संचय किया और दूसरे की सहायता नहीं की तो निश्चय ही मृत्यु के समय उसके प्राण बड़े संकट में रहेंगे ।

पूछत पूत कपूत बाबू धन केतनों कहाँ ।

प्राण परे साँकरे न हाँ करे न ना करे ॥

जीवन के उस पार धन का नहीं, निर्धन तथा परसेवापरायण का महत्व होता है । यही सद्गुरु हमें सिखाते हैं, अन्यथा उस पार क्या है, कौन जाने ।

उतते कोउ न आइआ जासे पूछूं धाय ।

इतते सब कोई जात है भार लदाय लदाय ॥

उतते सतगुरु आइआ, जाकी बुधि है धीर ।

भवंसागर के जीव को खेड़ लगाव तीर ॥

बाबा कबीर की चाणी याद रखनी चाहिए । हमें दूसरे की या अपनी दरिद्रता पर दया नहीं, संकोच करना चाहिए । उसे कर्म तथा भाग्य का फेर दोनों ही मानना होगा । भाग्य तथा कर्म सद्गुरु की कृपा तथा उपदेश से सुधरते हैं । पर अपने सुधार के साथ दूसरे के सुधार की बातें भी सोचनी चाहिए । मानव-जीवन की पहली को यदि सही ढंग से बुलझाना है तो अपने तथा पराये के भाग्य को मसान रूप से संवारना होगा । केवल अपना-अपना करने से कुछ नहीं होता । जीवन में साहस के साथ श्रद्धा के साथ विश्वास के साथ भगवान् में आस्था रखकर जो व्यक्ति जीवन बिताता है, उसी का जीवन सफल होता है, अन्यथा वाल्मीकि रामायण के अनुसार—

निरुत्साहस्य दीनस्य शोकपर्याकल्पनात्मनः ।

सर्वार्था व्यवसीदन्ति व्यसनंचाधि गच्छति ॥

‘जो पुरुष निरुत्साह, दीन और शोकाकुल रहते हैं उनके सब काम बिगड़ जाते हैं और वे बहुत बड़ी विपत्ति में पड़ जाते हैं ।

(सौजन्य—कल्याण)

ज्योतिष चन्द्रिका : सितम्बर 89/38

इच्छाओं की दासता

□ ज्योतिष चन्द्रिका

मनुष्य के पतन और गिरावट का कारण इच्छाओं की दासता है। जब तक मानव इच्छाओं पर काबू नहीं पा लेता तब वह अपने विषय में उतन विचार कर सकता है और तब ही उन पर आध्यात्म के गूढ़ रहस्य ही खुल जाते हैं क्योंकि कामनाओं का आधिक्य उसके मस्तिष्क का संतुलन बिगाड़ देता है और वह प्रत्येक कार्य को मन की रचियों से ही नापता है।

इच्छायें छोटी हों अथवा बड़ी, अच्छी हों या बुरी, इनकी दासता आखिर दासता है। मन और मस्तिष्क का इनकी ओर लगे रहना ही दासता का चिह्न है। इस दगा में बुद्धि निष्पक्षता पूर्ण निर्णय देने के योग्य नहीं रहती और न ही किसी इच्छा की पूर्ति के शुभ अथवा अशुभ परिणामों को समझती है एक इच्छा की पूर्ति अनेक इच्छाओं को जन्म देती है और (Geometrical Progression) से बढ़ती है, अर्थात् दो से चार और चार से सोलह गति से बढ़ती है। इसलिए महापुरुषों ने इच्छाओं के दमन पर बल दिया है जिससे मनुष्य उनकी पूर्ति में उनका दास ही न बन जाये।

इच्छा पूर्ति में मानव की दुर्बलता निहित है और दुर्बलता का दूसरा नाम ही दासता है। ज्यों-ज्यों मनुष्य इच्छाओं को पूरा करने में लगा रहता है, त्यों-त्यों उसका मन एवं मस्तिष्क दुर्बल होते जाते हैं।

आधुनिक आधिष्कार एवं अनुसन्धान भौतिकवाद की विकासोन्मुख इच्छाओं का एक प्रतिदर्श है। एक समय था जबकि लोग पेड़ों के पत्ते और फल-फूल के सेवन कर झोंपड़ियों में भी रहते थे और उनका सारा समय आत्म तत्व की खोज करने, जीवन के गूह्य-रहस्यों का उद्घाटन करने अथवा उस सर्वशक्तिमान के स्मरण में बीतता था और उसके विपरीत आज मानव का प्रत्येक क्षण भौतिकता की खोज, ब्रह्माण्ड के भ्रमण अथवा देशाटन में बीतता है क्यों? आज के मानव की इच्छायें इतनी बढ़ गयी हैं कि उसका सारा समय इनकी पूर्ति में ही लग जाता है।

स्मरण रहे कि इच्छापूर्ति की धुन बन्धन, दुःख, भय, चिन्ता और परचात्ताप देने वाली है और इसके विपरीत इच्छाओं से मुक्ति सेवा, परोपकार, दया, निरभिमानता, और निष्कामता के भावों की जननी है। इसलिए सौ वर्ष की स्वतन्त्रता श्रेयस्कर है क्योंकि मानव इस अलकाल में अपने उस लक्ष्य की पूर्ति करने में समर्थ हो सकता है जिसके लिए यह बार-बार जन्म लेता है और बार-बार उसकी प्राप्ति में प्रयत्नशील रहता है।

इच्छाओं के बन्धन से छूटने का एकमात्र उपाय यही है कि वह जीवनयापन की आवश्यकताओं को घटाकर मर्यादापूर्ण जीवन व्यतीत करने का दृढ़ संकल्प ले, अपने वस्त्र, बाहर एवं विचार को सादगी में ले आये जिससे न्यूनतम खर्च से अधिकतम लाभ हो। जब शरीर की आवश्यकतायें कम होंगी तो शरीर की ओर ध्यान भी न जायेगा और बुद्धि स्वतन्त्रतापूर्वक अपने परम उद्देश्य के पाने में सफल हो जायेगी।

वस्तुतः स्वतन्त्र वही है जिसने दास बनना नहीं सीखा और शूरवीर वही है जिसने इच्छाओं का दास बनकर जीवन व्यतीत नहीं किया। शरीर भले ही पिंजरे में बन्द हो, किन्तु यदि मनुष्य का चित्त कामनाओं का बन्दी है तो इससे बढ़कर बन्धन और आसक्ति कोई नहीं हो सकता क्योंकि कामनाओं का बन्धन मन को सदैव ईर्ष्या, द्वेष, हर्ष-शोक, हानि-लाभ, उचित-अनुचित आदि मज्जीन भावों का शिकार बनाये रखता है जिससे मन विचलित चिन्तामय और भयभीत रहता है। इस बन्धन से मुक्त होने के लिए जीवन को अनुशासनदृष्ट करने की आवश्यकता है; अनादर, कामलासताओं, आत्म तुष्टि, स्वार्थ अंधता और लोभ को त्यागने की आवश्यकता है, जीवन में ऊँचे आदर्श धारण करने की आवश्यकता है। तब ही हम वास्तव में मनुष्य कहलाने के अधिकारी बन पायेंगे और तब ही हम सूक्ष्म बुद्धि को धारण कर आध्यात्मिक शान्ति की प्राप्ति की ओर अग्रसर हो सकेंगे।

क्या त्याग में खुशी है ?

आज के युग में जब कि किसी भी मनुष्य की आवश्यकताएँ पूरी नहीं होतीं और आवश्यकताओं के पूरा न होने से घर के अन्दर और अपने मन के भीतर इतना क्लेश रहता है तो क्या इन्हीं वस्तुओं की प्राप्ति के त्याग में खुशी हो सकती है ? प्रश्न बड़ा गम्भीर है किन्तु दोनों पहलू विचारणीय हैं क्योंकि हमारा दैनिक जीवन, हमारा सामाजिक उत्थान और हमारी जातीय उन्नति वस्तुओं की बहुतायत पर निर्भर है। फिर वस्तुओं की प्राप्ति से क्यों मुँह मोड़ लिया जाये ? क्या उनके त्याग से दुःख अधिक नहीं होगा ?

यदि विचारपूर्वक देखा जाये तो उत्तर नहीं में मिलता है क्योंकि हमें पहले तो उनकी खुशी का अनुमान लगाना चाहिए जिनके पास खाने, पीने, पहनने और दिश्राम की सब सामग्री उपलब्ध है और फिर उन लोगों की खुशी का जो दैनिक जीवन के समान एकत्र करने में रात-दिन लगे हुए हैं तथा उन लोगों का भी जो अपने जीवन-निर्वाह के लिए ईमानदारी से परिश्रम से और मर्यादानुसार प्रयत्न करते हैं और जो कुछ मिल जाता है, उसी से सन्तुष्ट रहते हैं।

अपने पास-पड़ोस के सभी धनी लोगों का जायजा लगाइये और देखिये कि उनके पास कोठियाँ और कारें होते हुए, नौकर-चाकर और अन्य सुख-सुविधायें होते हुए उन्हें खुशी और सुख है ? गहरी खोज से पता चलेगा कि ऐसा नहीं है। वे भी रोते हुए दिखायी देते हैं। उनको अब भी किसी न किसी वस्तु का अभाव अखर रहा होता है, वरन् ऐसा अभाव जिनकी पूर्ति करना उनके लिए असंभव है। दूसरे शब्दों में उन्हें दुःख है कि अथाह सम्पत्ति के होते हुए उनके कोई सन्तान नहीं। फिर दूसरे ऐसे लोग भी हैं जिनके पास उनसे भी अधिक सुख सुविधाओं की सामग्री है। इसके अतिरिक्त कितना भारी दुःख उन्होंने झेलकर इतना धन एकत्र किया और अन्त में उनके बाद इसका क्या होगा ? क्या उनकी पत्नी और सम्बन्धी इस धन का पूरा-पूरा लाभ उठा सकेंगे। क्या उन्हें घर की ओर रुपये की अधिक प्राप्ति जीते जी और मरने के पश्चात् भी कर (टैक्स) नहीं देने पड़ते। आखिर यह झमेला क्यों ? इसी उलझन में फँसे प्रायः घनाढ्य लोग देखने में आते हैं।

अब साधारण कुटुम्बी को लीजिये। जब तक आवश्यक वस्तुएँ घर में नहीं, उसको शांति नहीं और जब उन्हें पूरा करने में लग जाता है तो कितने भ्रष्ट साधनों का प्रयोग कर धन कमाता है और धन की प्राप्ति के उपरान्त उसके मोह और लोभ की अग्नि कितनी तीव्रता से प्रज्वलित होती है। यह बात तो उसका मन ही बतला सकता है। तात्पर्य यह कि खुशी साधारण कुटुम्बी से मीलों दूर है।

एक निश्चिन्त को लीजिये। धन की प्राप्ति ही उसका धर्म और ईमान है। पैसे-पैसे पर अपनी शारीरिक शक्ति को बेचने पर तत्पर हो जाता है। कितनी आपत्ति में ग्रस्त है। किन्तु इतने दुःख से कमाया हुआ धन उसे कितनी देर खुशी दे सकता है और खुशी कितनी देर रह सकती है ? क्या इतने बाल-बच्चों का भरणपोषण उसके कमाये हुए धन से सदा के लिए हो सकता है ? क्या धन के एकत्र करने की समस्या फिर नहीं उठेगी ? उत्तर "हाँ" में देना कठिन है।

तो आइये अब चित्र का दूसरा पृष्ठ देखें कि क्या सांसारिक वस्तुओं एवं इच्छाओं के त्याग में तो कहीं खुशी निहित नहीं है। कदाचित् दिचार किया जाये तो विदित होगा कि सांसारिक वस्तुओं की प्राप्ति चिन्ता, दुःख, क्लेश और दुविधा के भयंकर राक्षसों का सामना किये बिना असंभव है। कितना दुःख है इनकी प्राप्ति में ! इसलिए भूत-दुष्ट वाला मनुष्य अपने जीवन को मर्यादा में बाँधकर इनको प्राप्त करने में ज्यादा दुःखी नहीं होता, वरन् सादगी को अपना कर निर्वाह करने वाला जीवन व्यतीत करता है। दूसरे शब्दों में वह त्याग की भावनाओं को मन में जागृत करके संसार की अधिक वस्तुओं को मन से त्याग कर शेष जीवन-क्रिया को साधारण रूप से पूरा कर लेता है और धनदागों से

ज्योतिष चन्द्रिका : सितम्बर 89/40

कहीं अधिक सुखी रहता है। यह दशा सूझ-बूझ रखने वाले निर्धन व्यक्ति की होती है। वह अपनी अल्प आय से ही सन्तुष्ट होकर अपने प्रभु का गुण-गान करता है।

धनाढ्य व्यक्तियों से त्याग की भावना बड़ी दूर रहती है। इसलिए उनका जीवन बड़ा क्लेशमय रहता है। घर के अन्दर क्लेश और मन में दुविधा दोनों प्रकार से धनी का जीवन शान्तिमय नहीं होता और जो धन उसने बड़े परिश्रम से कमाया होता है, उसके त्याग के क्या माने? धन बढ़ाने के साधन अब उसके लिए आम खुले हैं। फिर वह उनसे लाभ क्यों न उठाये। और यदि कभी त्याग की भावना मन में जागृत हो भी गयी, तो फिर वह उसे किसी पटित्व फंड या सरकारी भवन या मन्दिर अथवा गुह्यद्वारे के भव्य भवन को उसारने में क्यों न लगाये जिससे उसकी प्रशंसा तो हो और कम से कम लोग सेठजी का नाम तो लें। अर्थात् लोभ और मोह के साथ यदि अहंकार की जड़ों में पानी नहीं गया तो वह धन का त्याग व्यर्थ का। अनुमान लगाइये धनवानों के त्याग का?

छोड़िये सांसारिक वस्तुओं की प्राप्ति और त्याग की समस्या को और आइये विचार करें कि क्या त्याग की भावनाओं से हमारे मन और बुद्धि पर क्या प्रभाव पड़ता है और हमें कितनी खुशी प्राप्त होती है?

यह मान्य बात है कि संसार के समस्त झगड़े, धरलू कलह और परस्पर वैमनस्य सांसारिक वस्तु के ग्रहण के कारण होते हैं। यह मिट्टी और जल, यह प्रकाश और वायु जब उस प्रभु की देन हैं तो फिर झगड़े क्यों? न इन्हें हम अपने साथ ले जा सकते हैं और न बाज तक कोई हमसे पहले इनको एकत्र कर अपने साथ ले गया है, किन्तु झगड़े होते रहते हैं इन्हीं मिट्टी और जल पर। क्या शहर और क्या नहरें, क्या परमाणु और परमाणु शक्ति, इन्हीं तत्वों का हेल-मेल है। तो फिर इतना उपद्रव क्यों? क्यों न सबका अधिकार उन पर समान हो। क्यों न हम उन वस्तुओं के त्याग से, जो वास्तव में हमारी नहीं, औरों को खुशी प्रदान करें और स्वयं भी खुश हों।

स्मरण रहे कि वस्तुओं और विचारधारा, दोनों के त्याग से प्रसन्नता मिलती है और जिनके लिए इनका त्याग किया जाता है वह भी प्रसन्नता प्राप्त करता है। झगड़ो होने का प्रश्न ही नहीं उठता। तनिक किसी बच्चे की खुशी का अनुमान लगाइये, जब वह आपकी एक सौ रुपये की घड़ी को उठाकर कुछ देर के लिए छिपाना चाहता है। हम समझते हैं कि इस बच्चे को हमारी वस्तु का आदर नहीं। परन्तु वास्तव में हम उस बालक की प्रसन्नता का अनुमान ही नहीं लगा सकते जो उसे अपनी चंचलता के पूरा करने से प्राप्त होती है। बड़ी-बड़ी समस्याओं में अहंकार या टपकता है जिसके कारण निर्णय नहीं हो पाते। कुछ लोग सम्भवतः वस्तुओं का त्याग तो कर दें, किन्तु अपनी विचारधारा का त्याग नहीं कर पाते। यदि हम शाश्वत शांति या सुख चाहते हैं तो हमें दोनों के त्याग में तनिक भी संकोच नहीं होना चाहिए। अपने विरोधी की बात को अवश्य सुनिये और उसका दृष्टिकोण समझने का यत्न कीजिये। यदि इस पर संतोष न हो, तो भी त्याग की आहुति में अपने मन की समस्त मनोवृत्तियों और आशाओं को भस्म कर दीजिये। इससे कम से कम हमारे मन की दुविधा नाश हो जायेगी और फिर संकल्प-विकल्प उठने की गुंजायश न रहेगी। वस्तुतः एक संकल्प को स्थान देने से विकल्प उत्पन्न होता है। और फिर संकल्प-विकल्प का क्रम जारी होकर ऐसी ज्वाला भड़क उठती है जो हमें और हमारे विरोधी दोनों को अपनी लपेट में ले लेती है। इसलिए दोनों और आग लगाने वाले हम स्वयं ही होते हैं और यह आग तभी बुझ सकती है जब हममें त्याग की भावना अधिक मात्रा में होगी। गत वर्ष में त्याग के भाव हमारे मन में कितनी मात्रा में थे, यह हम स्वयं भली-भाँति जानते हैं और चालू वर्ष में हमारा त्यागी जीवन कितना होगा, यह हमारे निश्चय पर निर्भर है। यदि हमारी बुद्धि में विवेक है, हमारे मन में प्रभु विश्वास है और हमारे संकल्पों में परोपकारी भाव हैं, तो निश्चित है कि हम इस वर्ष पहले की अपेक्षा अधिक शान्त, अधिक प्रसन्न और अधिक निश्चिन्त होंगे। युग में परिवर्तन तो होते ही रहेंगे, परन्तु त्यागमय जीवन इनसे कदापि प्रभावित नहीं हुआ करता। वह अडोल चित्त एवं निश्चल वृत्ति वाला योगी अपने त्याग के बल से सब आपत्तियों पर विजय प्राप्त कर जाता है।

(सौजन्य—समतादर्पण)

ज्योतिष चन्द्रिका : सितम्बर 89/41

योगिनी की यात्रा

(श्रीरघुनन्दनजी पालीवाल)

□ ज्योतिष चन्द्रिका

बहुत दिनों तक घूनी रमाते और अपने इष्टदेव की आराधना करते योगिनी अकुला उठी। वह प्रतिदिन चित्त को एकाग्र कर आसन लगाकर बैठती—घंटों अपनी दुःख-कहानी बखानती, किंतु ऐसा प्रतीत होता है कि उसकी कर्णगिरा प्राणनाथ के कानों तक नहीं पहुँची, उसके प्रेम की अग्नि से उनका हृदय नहीं पसीजा।

योगिनी उठ खड़ी हुई। उसे न यह पता कि कहाँ जाना है, न यह सुविधि कि मार्ग में किन-किन वस्तुओं की आवश्यकता होगी। उसके तन पर एक भगवा मोटी धोती, जिसके एक कोने में थोड़े से फूल बँधे हुए, हाथों में जल का भरा हुआ लोटा। सूर्योदय से चार घड़ी पूर्व अपनी कुटी की सब वस्तुओं को उतरी प्रकार छोड़ वह नंगे पाँव चल पड़ी। पहर-भर दिन चढ़ते-चढ़ते वह बहुत दूर पहुँच गयी। जब एक गाँव के पास पहुँची, तब एक मनुष्य ने, जो सामने से जा रहा था, झुककर उसे प्रणाम किया और पूछा—

माईजी ! आज कहाँ जाने का विचार है ?

योगिनी—भाई ! मैं प्राणनाथ के मन्दिर में फूल और जल चढ़ाने जा रही हूँ।

मनुष्य—यह किस स्थान का पवित्र जल है ?

योगिनी—चक्षु-धाम के पास प्रेमाश्रु-सरोवर है, यह जल उसी का है।

मनुष्य—और ये सुगन्धमय पुष्प ?

योगिनी—हृदय-ग्राम के पास एक बड़ा प्राचीन वृक्ष है, उसे प्रेमापादप कहते हैं, ये उसी के कुछ मधुर-गन्धकीय पुष्प हैं।

मनुष्य—और माई ! आपके उन प्राणनाथ का मन्दिर कहाँ है ? मेरा सविनय निवेदन है कि आप मुझे अपने साथ ले चलें।

योगिनी—मुझे स्वयं पता नहीं कि वह मन्दिर कहाँ है। इतना अवश्य सुना है कि उसका रास्ता इतना कठिन और भयंकर है कि कोई पुरुष वहाँ नहीं जा सकता।

मनुष्य—अच्छा माई ! मैं यही से तुम्हारे लिए प्रार्थना करूँगा।

योगिनी आगे चल पड़ी। रास्ता एक घने जंगल में चला गया था, थोड़ी दूर जाकर एक संकुचित पगडंडी ही रह गयी। दोनों ओर काँटों की बड़ी-बड़ी झाड़ियाँ थीं, जिनके काँटे टूट-टूटकर राह में बिखर गये थे। आगे चलने के मार्ग में भी छोटी-छोटी झाड़ियाँ आने लगीं। योगिनी बराबर चली जा रही थी। काँटे पद-पद पर उसके पाँव में चुँब जाते थे। जब पीड़ा के कारण चला न जाता, तब वह बैठ जाती और जितने काँटे निकाल सकती, निकाल देती, फिर आगे चल पड़ती थी। वह रात-दिन इसी प्रकार चलती रही। उसके पाँव छिदकर चलनी हो गये, प्रत्येक पद में भूमि पर खत की छाप लगने लगी। काँटे आप ही लगने और निकलने लगे। योगिनी अपनी धुन की पक्की थी। उसे प्राणनाथ मन्दिर जाना था। कई दिन-रात वह इसी प्रकार चलती रही। खाने के नाम पर एक खील भी मुँह में नहीं गयी। बुझाने हेतु एक जलबिंदु भी मुख में नहीं पड़ा। केवल एक आशा-लता के सहारे बेचारी काँटों से छिदे हुए पैरों को उठाया आगे बढ़ी जा रही थी। प्रकृति देवी का ऋणी भला कब तक चल सकता है ? अन्त में वह प्यास से व्याकुल हो उठी, उठाना असम्भव हो गया। वह पगडंडी के एक किनारे गिर पड़ी और प्रेम-पीड़ित हृदय को किसी प्रकार सँभालकर की राह देखने लगी।

ज्योतिष चन्द्रिका : सितम्बर 89/42

मृत्यु न आयी। बाट देखने पर वह आया ही कब करती है? वह तो उन्हीं का पलना पकड़ती है जो उसके दूर भागते हैं। हाँ! योगिनी! कौन है सिर पर पानी का घड़ा रखे? एक पुरुष! योगिनी ने उसे देखा और अपनी रहीन सही चेतना को सँभालकर उससे थोड़े-से जल के लिए प्रार्थना की। उस आदमी ने पूछा—तू कौन है? इस निर्जन स्थान में अकेली किसलिये आयी है?

योगिनी—भाई! मैं यात्री हूँ। प्राणनाथ के मन्दिर को जा रही हूँ। प्यास से विकल हूँ, पैसे नहीं उठता। यदि थोड़ा-सा जल दोगे तो तुम्हारा महान् कल्याण होगा।

पुरुष—तुम्हारे लोटे में तो जल भरा है। उसमें से थोड़ा-सा क्यों नहीं लेती?

योगिनी—वह जल तो मुझे मन्दिर में चढ़ाना है। उसे अपने प्राण बचाने के लिए भी पीना महापाप है।

पुरुष—अरी पगली! इन बानों में क्या रखा है? और कहीं से लोटा भर लेना, प्राणनाथ क्या देखने आते हैं? यह जल और फूल मुझे दे दे, मैं तुझे पानी पीने को दे दूँगा।

योगिनी के हृदय में इस पुरुष की ओर से एक प्रकार की घृणा उत्पन्न हो गयी। वह चुप हो गयी। योगिनी को चुप देखकर वह पुरुष बोला—‘देख, मेरा कहना मान नहीं तो मर जायगी।’

योगिनी—‘ईश्वर तुम्हारा भला करे, तुम अपना रास्ता लो। मुझे मर जाना स्वीकार है। निर्मम पुरुष चला गया। योगिनी ने आँखें बन्द कर लीं और वह मृत्यु की प्रतीक्षा करने लगी। आकाश में एक छोटा-सा बादल का टुकड़ा आया। उसका हृदय दया के अमृत से भरा था। प्राणनाथ के यात्री के साथ एक सांसारिक पुरुष का वह क्रूर वताव देखा उसका हृदय पट्ट पड़ा, अमृत वर्षा होने लगी। योगिनी फिर मजीब हो गयी और ईश्वर को धन्यवाद देती एवं प्रेम की माला जपती हुई आगे बढ़ी। पाँच-छः दिन चलने के पश्चात् वह जंगल के दूसरे किनारे पर पहुँच गयी। वह समझी कि जंगल समाप्त होने पर मन्दिर दिखायी पड़ेगा, किन्तु यहाँ उसका कोई चिह्न भी नहीं था। काटेदार वन समाप्त हो गया, किन्तु उसकी आशा-लता में कली अंकुरित न हुई। रास्ता एक बड़े निर्जन तराई में बदल गया। योगिनी उमी पार हो ली। चारों ओर रेत-ही-रेत थी, धूप ऐसा कड़ाके की थी कि भूमि अंगारे के समान तप रही थी। राया का कहीं पता नहीं था। हाँ, यदि थोड़ी सी कहीं थी तो रेतिल टीलों की जड़ में। वहाँ चर और अचर दोनों ही इतने ही थे। योगिनी नती जा रही थी। तनवे के छाते पग-पग पर फूटने लगे। छालों का पानी निकलकर जलती हुई रेत में ठंडा कर देता था। इन छालों के पड़ने और फूटने में योगिनी को यही एक सुख था। कई दिन-रात इसी प्रकार चलते-चलते भूख और प्यास से आतुर होकर वह एक दिन दोपहर के समय एक रेत के टीले का आड़ में बैठ गयी। थोड़ी देर बाद ही विश्राम न कर पायी थी कि पाँच लंबे-चोड़े मनुष्यों ने, जिनके हाथों में बड़ी-बड़ी भालेदार लाठियाँ थी, आकर घेर लिया। वे आपस में कहने लगे—‘देखो, यह स्त्री बिना कर दिये ही हमारे देश में चली आयी। योगिनी भौनकती रह गयी।’

एक मनुष्य—क्यों री! तुने कर क्यों नहीं दिया?

योगिनी—भाई! मैं न कर जानती हूँ, न तुम्हें। तुम मुझे दुष्टिया के पीछे क्यों पड़े हो? दूसरा मनुष्य—‘तुम यम के दूत हैं। यह देश हमारा है। किसी स्त्री को कर दिये बिना इस देश में आने की आशा नहीं है। योगिनी—‘भाई! मेरे पास है ही क्या जो मैं कर दे दूँ? हृदय भी अपना नहीं है, केवल एक दुःख-रहित और अश्रुनिचित शरीर है, उसे तुम ले लो। तीसरा मनुष्य—और यह जल और फूल? योगिनी—‘वे तो प्राणनाथ के मन्दिर में चढ़ाने के लिए हैं। चौथा मनुष्य—इन्हें कर मैं क्यों नहीं दे देती? योगिनी—‘ऐसा कदाहि नहीं हो सकता—पाँचवाँ मनुष्य—‘तो हम तुझे मराने के दरबार में ले चलेंगे। योगिनी दुम्हारी इच्छा।

उन लोगों ने योगिनी को पकड़ लिया और यमराज के दरबार में खींचते हुए ले गये। और भी बहुत से

अपराधी वहाँ उपस्थित थे। जब योगिनी की बारी आयी, तब यमराज ने दून से पूछा कि 'इसका क्या अपराध है?' दूनों ने उत्तर दिया—'महाराज ! इसने कर नहीं दिया।' यमराज ने योगिनी की ओर देखकर पूछा—'क्या ये सत्य कहते हैं?'

योगिनी—'हाँ महाराज ! सत्य कहने हैं।' यमराज ने क्रुद्ध होकर पूछा—'तेरा नाम?' योगिनी—'प्रेम की योगिनी।' यम—'क्या काम करती हो?' योगिनी—'प्राणनाथ की खोज में भटक रही हूँ, उनके पास पहुँचकर रहूँगी।' यम—'क्या खानी हो?' योगिनी—'प्राणनाथ के ध्यान का अमर फल।' यम—'क्या पीती हो?' योगिनी—'प्राणनाथ की स्मृति-पुष्टा।' यम—'तुम्हारे हाथ के लोटे में क्या है और ये सुगन्धित पुष्प कहाँ के हैं?' योगिनी—'जल-प्रेमाश्रु-मरोवर का है और पुष्प प्रेम-विटप के।' यमराज कुछ घबराये, फिर उन्होंने पूछा—'योगिनी ! इन्हें क्या करेगी?' योगिनी—'प्राणनाथ के मन्दिर में जाकर उनके चरणों में चढ़ाऊँगी !'

यमराज सहमा अपने आसन से उठ खड़े हुए। उन्होंने योगिनी को नमस्कार किया और उससे क्षमा माँगी। फिर अपने दूनों की ओर फिरकर कहा—'देखो, अब से यदि तुमने प्रभु-प्रेम के यात्रियों से कर माँगा या उन्हें किसी प्रकार का बाध दिया तो तुम्हारे प्राणों की आहुति दे दूँगा। जाओ योगिनी को तुरत मन्दिर के पास पहुँचा आओ।'

दूनों ने भूमि पर सिर रखकर प्रणाम किया और बात-की-बात में योगिनी को प्राणनाथ के मन्दिर के पास पहुँचा दिया।

कैलास रमणीक स्थान था। चारों ओर शान्ति-ही-शान्ति थी। दिव्य वृक्षों और लताओं की डालियाँ फूलों और फलों के बोझ से झुनी पड़ती थीं, अनेक प्रकार की मधुर मनोरम सुगन्ध वायुमण्डल में फैल रही थी, रंग-बिरंगी चिड़ियाँ एक डाली से दूसरी डाली पर और एक वृक्ष से दूसरे वृक्ष पर उड़ रही थीं तथा अपनी मधुर स्वर-लहरी से इस स्थान को स्वर्ग से बड़ाकर बना रही थीं। सुखद सुगन्धमय समीर कलियों और हृदयों को खिलाता हुआ बह रहा था। इस मनोरम स्थान के बीच में एक सुन्दर दिव्य सार्गमन्दिर था। योगिनी आने परों की पीड़ा, शरीर की थकान, भूख और प्यास सब भूल गयी। बड़े उत्साह से वह मन्दिर की सीढ़ियों तक गयी। द्वार बंद था। पुजारी ने कहा—'योगिनी अब विश्राम करो ! सायंकाल मन्दिर का द्वार खुलेगा।'

योगिनी ने पास बहती हुई सरिता में स्नान किया। फिर थकी हुई तो थी ही, एक घने वृक्ष की छाया में पड़कर सो गयी। जब आँख खुली, तब रात हो गयी थी। तारागण आकाश मण्डल में चमक रहे थे। चन्द्रमा अस्त होने वाले थे। योगिनी मन्दिर के द्वार पर गयी। पुजारी ने कहा—'योगिनी ! द्वार खुला था, किन्तु बन्द हो गया। तुम देर से आयीं।' योगिनी—'पुजारीजी ! अब कब खुलेगा?' पुजारी—'कुछ पता नहीं कब और किस समय खुलेगा। यह महाराज की इच्छा पर अवलम्बित है।'

योगिनी लौट आयी। उसने एक पेड़ के नीचे धूनी रमा दी। दिन-रात प्राणनाथ के नाम की माला जपने लगी। प्रत्येक क्षण मन्दिर के द्वार पर ही दृष्टि टकराती थी। इसी प्रकार प्रतीक्षा करते-करते तीन दिन बीत गये। तीसरे दिवस का दोपहर ढल गया, धूप मध्यम पड़ गयी, ठंडी शान्तिमय हवा चलन लगी। माला योगिनी के हाथ से गिर पड़ी। दृष्टि मन्दिर की ओर से सितटकर आँखों में समा गयी। ऊपर की पलकों भारी होकर नीचे की पलकों पर आ गिरों। यह दशा कितनी देर रही, इसका पता नहीं। हाँ, जब आँख खुली तो देखा कि पुजारी सीढ़ियों से नीचे उतर रहे थे। साथ ही ठन्का, घबराकर पूछा—'पुजारीजी क्या समाचार है?'

पुजारी—'द्वार खुला था। यात्रियों ने दर्शन किये, फिर बंद हो गया। तुम सोती ही रहों।' योगिनी अकुला उठी। उसे वाटिका के फल काँटे के समान आँखों में गड़ने लगे। पक्षियों का राग हृदय में अनिर्वचनीय वेदना उत्पन्न करने लगा। मन्द-मन्द वायु शून के समान चुपने लगी। योगिनी ने प्राणनाथ से कहा—'मेरी आकुलता अभी अधूरी है, वही मुझे जिला रही थी, पर अब ऐसा नहीं है। अब तो आकुलता सीमा पर पहुँच चुकी है। अब तो दर्शन देते

ही होंगे।'

वस यों आकुल पुकार करते-करते सायंकाल हो चला। वृद्ध गुर्य पश्चिम की पहाड़ियों की आड़ में अस्त होने लगा। योगिनी का निस्तेज शरीर आशा-निराशा में डोलने लगा। संझा में रात्रि का परिमाण अधिक बढ़ने लगा। एक ठंडी हवा का झोंका मन्दिर की ओर से आया, तदनन्तर एक मधुर राग की तान। मन्दिर का द्वार खुला, योगिनी की जान में जान आयी। वह उठ खड़ी हुई तथा जल और फूल लिये हुए मन्दिर के अन्दर गयी। सब यात्रियों के पश्चात् उसने अश्रुजल से प्राणनाथ के पद-कमलों को धोकर प्रेम-वृत्त के फूल चढ़ाये। प्राणनाथ की समाधि टूटी, आँखें खुलीं और मधुर मुस्कान की छटा छा गयी। फिर तो योगिनी प्राणनाथ के बाहुपाश में बद्ध और उनके हृदय से चिपटी थी। प्राणनाथ ! प्राणनाथ ! प्राण है कि प्राणनाथ, कुछ पता नहीं।



PEST CONTROL INDIA Ltd.

7. JANTAR MANTAR ROAD,
NEW DELHI-110001

INDIA'S LARGEST PEST CONTROL
INDUSTRY SERVING THE NATION
FOR MORE THAN 34 YEARS
FOR BETTER HEALTH
AND MORE FOOD

Telex : 31-63921 PCIL-IN. Gram : PESTCIL

Telephone : 332 8768
332 1569

धर्मयुद्ध—क्षेत्र का चुनाव कैसे हुआ ?

□ डॉ० श्रीरामचरणजी महेन्द्र, एम० ए०, पी-एच० डी०

‘भगवन् ! अब तो सत्र तर्क व्यर्थ हो गये, कौन्नों के साथ युद्ध अवश्यंभावी है। न्याय, मज्जनता, त्याग, सहयोग, संधि आदि का कोई मूल्य नहीं है भाइयों की दृष्टि में।’—युधिष्ठिर ने गम्भीर निराश्रय-मुद्रा में श्रीकृष्ण से कहा।

‘युधिष्ठिर ! यह युद्ध साधारण नहीं, असाधारण भीषण युद्ध होगा। विपुल संख्या में वीर सैनिक हताहत होंगे, मृत्यु को प्राप्त होंगे। भयानक नर-संहार होगा—महाभारत का भीषण युद्ध। यह युद्ध आगे बढ़कर एक महान् धर्मयुद्ध का विकराल रूप धारण कर लेगा। मृत्यु, हिंसा और नर-संहार का भीषण ताण्डव—उसकी कल्पनामात्र से भय-भीत हो रहा हूँ। इतनी बड़ी संख्या में लोगों की भयानक मृत्यु का भीषण मानसिक आधार कैसे सँभाला जा सकेगा ? कौन-से वे साहसी वीर होंगे, जो उस आघात को सहन कर सकेंगे ?’

‘फिर समस्या क्या है भगवन् ? युधिष्ठिर ने पूछा।

‘इस युद्ध के लिए स्थान-विशेष का चुनाव होना चाहिए।’—भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा।

‘स्थान का क्या महत्व है भगवन् ?’—युधिष्ठिर ने संदेह प्रकट किया।

‘यदि किसी भी साधारण स्थान पर यह भयानक युद्ध किया गया तो लोग दूर-दूर तक सदा-सर्वदा के लिए भय, निराशा, आतंक आदि से बुरी तरह व्यथित हो जायेंगे। रात्रि की निद्रा और दिन का कार्य तथा भोजन तक उन्हें न आयेगा। वे दिन-रात मृत्यु के दुःस्वप्नों में चौक-चौककर उठेंगे। उन्हें अपने चतुर्दिक लपलपाती जीभवाली मृत्यु ही दृष्टिगोचर होगी। महिलाएँ भय के आतंक से नये शिशुओं को प्रसव तक न कर सकेंगी। भगवान् आगे कुछ न कह सके, युद्ध की कल्पना कर अनायास चुप हो गये।

भगवान् श्रीकृष्ण को ही धर्म-युद्ध के लिए स्थल के चुनाव की जिम्मेदारी सौंपी गयी थी। ऐसा कौन-सा वीर प्रदेश होगा, ऐसे कौन-से धीर-गम्भीर स्थितिप्रज्ञ लोग हो सकते हैं जो मृत्यु और नर-संहार की दारुण मानसिक व्यथा सँभाल सकें। इसी चिन्ता में भगवान् श्रीकृष्ण ने अनेक स्थलों का भ्रमण किया। उन्होंने बहुत-से प्रदेशों का निरीक्षण किया, अनेक प्रान्तों के लोगों के आत्मविश्वास, साहस, धैर्य, स्थिर-बुद्धि, शान्त-संयत रहने की शक्ति, तटस्थभाव से मृत्यु हिंसा और नर-संहार का ताण्डव सहने की शक्ति का परीक्षण किया। वे कहते थे कि युद्ध-स्थल ऐसा हो जहाँ के सीमा-वर्ती लोग साहस और धैर्य की कसौटी पर खरे उतरें।

मृत्यु की कल्पनामात्र से लोग काँप उठते हैं। जहाँ अगणित सैनिक वीर, नागरिक प्रतिदिन मृत्यु के मुँह में जायेंगे, कल्पना के स्थान पर वास्तविकता में जहाँ मृत्यु से साक्षात्कार होगा, नर-संहार से युद्ध-भूमि लाल हो जाएगी रक्त की नदियाँ बहेंगी, वहाँ के लोगों की सहिष्णुता सर्वाधिक होनी चाहिए। उनकी सहनशक्ति और सामर्थ्य सबसे दृढ़ हो। वे कष्टों—मृत्यु के दृश्यों, हिंसा, मारकाट को भली-भाँति सहन कर सकें—शान्त और स्थिर रहें। ऐसे प्रदेश की खोज में श्रीकृष्ण इतस्ततः घूमते रहे। स्थान-स्थान का निरीक्षण करते रहे, किन्तु उन्हें युद्धभूमि न मिली। ढूँढ़ते-ढूँढ़ते जब वे श्रान्त हो गये तब कौन मित्रेयी युद्धभूमि ? यों सोचने लगे।

ढूँढ़ते-ढूँढ़ते वे एक दिन संयोगवश कुरुभूमि पहुँचे। उस दिन वे खेतों के बीच से जा रहे थे, चलते-चलते थककर चकनाचूर हो गये थे, अतः विश्राम के लिए एक छायादार बट-वृक्ष के नीचे ठहर गये। उनका मन इस चिन्ता से भारी था कि धर्मयुद्ध के लिए क्षेत्र कैसे कहाँ मिलेगा ? उधर महाभारत का युद्ध काले बादलों की तरह घुमड़ रहा था।

ज्योतिष चन्द्रिका : सितम्बर 89/46

सोत्र-विचारते मध्याह्न हो गया। सूर्य की तीक्ष्ण किरणों में आग बरसा रही थी। थोके-नादे किमन हल जोतकर भोजन करने जा रहे थे। उसी पल्लियों निरुपर रखे उनका भी बरसात रही थी। विराम हो जाता था।

सहसा भगवान् ने एक विचित्र दृश्य देखा—एक कृपकर्मि इना अपने पति के लिए खाने की ओर बड़ी बली आ रही है। वह प्रातः से ही अपने पति के साथ खेत पर परिश्रम कर रही थी। अपने छोटे-से बच्चे को वृक्ष की छाया में सुलाकर निकट ही घर से भोजन लेने चली गयी थी। वापस आने-आते अचानक उसने देखा कि उसके छोटे-से बच्चे के पीछे एक विषैला साँप कुंडली-मारे बैठा है। बच्चे के सिर पर साक्षात् मौन खड़ी थी। वह भावी आशंका से यकायक काँप उठी। वह भोजन की गोटली को छोड़कर पागल-सी रोती-रूखती अपने बच्चे की जीवित-रक्षा के लिए दौड़ी, परंतु दुर्भाग्य उस माता के पीछे पड़ा था। अथक प्रयत्न करने पर भी उसने पूर्व कि वह बच्चे के समीप भी पहुँच पायी, वह अवोध शिशु मृत्यु का ग्रास बन चुका था।

बच्चा विषैले सर्प के काटने से तत्क्षण मर गया। अब माता क्या करे? भारी मन और आँसू-भरे नेत्रों से व्यथित माता ने अपने हृदय के टुकड़े का शत्रु देखा, दीर्घ निःश्वासात् भर्रा फिर भोजन की गोटली उठायी और उस ओर चला पड़ी। जहाँ उसका थका-माँदा पति भोजन की प्रतीक्षा कर रहा था।

पति-पत्नी ने मिलकर भोजन किया। फिर विवेकशीला पत्नी ने अपने पति को पुत्र की नूतना दी। शोक से विह्वल पिता भी मानसिक क्लेश से कुछ देर मौन रहा। कुछ क्षण के लिए बिलकुल क्लिप्तचित्त बिलुप्त हो गया था।

कुछ देर तक दोनों शोक-विह्वल रहे। माता का हृदय जोर-जोर से धड़कता रहा। गम्भीर मुद्रा और निरुपाय स्थिति अधिक देर तक बनी रही। फिर दोनों ने शान्त, संतत मनःस्थिति में चुनचाप बिना किसी विलाप किये अपने पुत्र का अन्तिम संस्कार किया।

भगवान् श्रीकृष्ण ने यह सब देखा, तो वे चकित रह गये। ओह ! कितनी सहिष्णुता, धैर्य, कर्तव्यनिष्ठा है इस दम्पति में। इन्होंने शोक के अमानक प्रहार को किसने साहस और मानसिक संतुलन से सहन कर लिया।

उनसे पूछे बिना न रहा गया, तब उन्होंने पूछा—‘भद्रे ! क्या तुम्हें अपने प्रिय पुत्र की आकस्मिक मृत्यु का कोई दुःख नहीं हुआ ? तुमने उसे कैसे सहन किया ?’ यह प्रश्न या या धनुष से निकला हुआ दुःखी करने के लिए पीड़ा देने वाला बाण।

महिला कुछ देर शान्त चुन रही। वह अपने-आप में ही खोयी-खोयी-सी थी। फिर कहने लगी—‘प्रकृति के कुछ अदृष्ट नियम हैं। हर प्राणी उनमें बँधा है। उसके आगे किसी का बल नहीं चलता। दिन-रात, सुख-दुःख, हर्ष-विषाद का यह क्रम ऐसे ही निरन्तर चलता रहेगा। काल किसे कब कैसे आना ग्रास बना लेगा। यह कहा नहीं जा सकता। काल के आगमन को कोई नहीं जानता। वह बच्चे, जवान, वृद्ध किसीको कभी नहीं छोड़ेगा—यह सोच-सोचकर मन चिन्ता और गुप्त भय से भर जाता है, परंतु जो अनिवार्य सत्य है, जिसे मिथ्या नहीं किया जा सकता, उसकी चिन्ता या भय करने से भला क्या होगा ? मानव अपनी सारी शक्ति लगाकर भी काल के मुँह में नहीं बच सकता। यह सब तो हमारे पूर्वकर्मों के फल पर टिका हुआ है। हम सब को अकेले ही मृत्यु के मुँह में जाना है। फिर जो अवश्यभावी है, उसके लिए अधिक शोक भी व्यर्थ ही है। जो जीवन शेष है, उसी को अच्छी प्रकार सदुपयोग में लगाना, कर्तव्य करना और उसकी इच्छा न करना चाहिए। अतः मैं बच्चे के शीघ्र दुःख को भी सामान्य बने रहने और कर्तव्य-कर्म करने में ही महानता मानती हूँ।’

भगवान् श्रीकृष्ण ने सोचा—जिस प्रदेश में ऐसी साहसिक वीर माताएँ हैं, जहाँ कर्तव्य भगवान् से ऊँचा माना जाता है, वहीं महाभारत-जैसा भीषण युद्ध हो सकता है। वहीं के वीर पुरुष असंख्य मौतों का मानसिक भार संभाल सकते हैं। इस प्रकार कुरुक्षेत्र ही महाभारत-जैसे भीषण युद्ध के लिए चुना गया।

(सौजन्य—कल्याण)

ज्योतिष चन्द्रिका : सितम्बर 89/47

आयुर्वेद और रत्न

□ ज्योतिष चन्द्रिका

प्राचीन आयुर्वेद शास्त्र में अपने देर-देर तक किये गये अनुभवों के आधार पर विविध रोगों में रत्नों के प्रयोग की सलाह दी है। आयुर्वेद में इनका प्रयोग—(1) इनकी भस्म बनाकर और (2) पिष्टी बनाकर किया जाता है। प्रत्येक रत्न भस्म अथवा पिष्टी के रूप में प्रयुक्त किया जाना चाहिए किन्तु भस्म बनाने की प्रक्रिया एक जटिल क्रिया है। किसी अत्यन्त विद्वान् भस्म बनाने की कला में प्रवीण वैद्य द्वारा बनायी गयी रत्न भस्म का ही प्रयोग चिकित्सा पटु दैत्य की सलाह से करना चाहिए अन्यथा लाभ के स्थान पर हानि की सम्भावना होती है।

यूनानी हकीमों का मत

यूनानी हकीम अग्नि द्वारा रत्नों की भस्म बनाना अच्छा नहीं मानते हैं। उनका कहना है कि इस प्रकार तो रत्न एक प्रकार का चूना ही बन जाता है। अतएव उसमें रत्न के सारे गुण नहीं आते। वे रत्नों की पिष्टी (अत्यन्त सूक्ष्म चूरा) बनाकर काम में लाते हैं। चरक और सुश्रुत में भी प्रवाल, मुस्ता और शंख आदि की पिष्टी (चूर्ण) के प्रयोग का विधान किया है। भस्मों की अपेक्षा पिष्टियाँ ही अधिक लाभदायक प्रतीत होती हैं। कौन-सा रत्न या उसकी भस्म या पिष्टी किस रोग में प्रयुक्त की जाती है वह निम्नलिखित हैं।

1. बंगनी नीलम (शनि)—नपुंसकत्व लिंग, लिंग रोग, गैस्ट्रिक ट्रबल, योनि, गुदा, विषपान, वायु सम्बन्धित रोग, मूर्छा, हिस्टीरिया आदि में।
2. नीला हीरा (शुक्र)—मुख रोग, गला, वीर्य, गले से सम्बन्धित रोग, जलघात व वीर्य आदि रोगों में लिए। यह वीर्य क्षीणता सम्बन्धी बीमारी में लाभकारी होता है तथा अन्य कई रोगों के लिए काम आता है।
3. लाल माणिक्य (सूर्य)—अन्धता, हृदय रोग तथा हाट अटैक आदि रोगों में लाभ पहुँचाता है।
4. हरा पन्ना (बुध)—यह रत्न चर्म रोग, हकलाना तथा वाणी से सम्बन्धित रोगों में विशेषकर लाभकारी सिद्ध होता है। यह अंतर्द्वियों में सूजन, आँत रोग तथा अस्थमा आदि रोगों में भी लाभकारी होता है।
5. आसमानी पुष्कराज (गुरु)—यह रत्न मोटापा कम करने तथा शरीर सुडौल बनाने में सहायक सिद्ध होता है। जितर (लीवर) की बीमारी वाल रोगी के लिए यह एक वरदान होता है तथा चर्बी, पाँव, लंगड़ान, नितम्ब, स्तन, स्तन रोग, स्तन का कम बढ़ना आदि के लिए लाभकारी होता है।
6. पीला मूंगा (मंगल)—अण्डकोष, मसलस, सिर रोग, पागपन का दौरा पड़ना तथा हड्डियों से सम्बन्धित रोग में काम आता है।
7. नारंगी मोती (चन्द्रमा)—खून की कमी तथा खून का खराब होना, प्रदर, रक्तस्राव, रतौंधी, सीने का दर्द, कमजोरी, भँगापन, नेत्र रोग व दृष्टि दोष में काम आता है।

रत्न : मित्र तथा शत्रु

रत्न धारण करते समय ध्यान रखना चाहिए कि कहीं उसके विपरीत प्रभाव वाला रत्न तो नहीं धारण कर लिया है। क्योंकि रत्नों में भी मित्र तथा शत्रु होते हैं। अतः धारण करने से पूर्व यह जानना अति महत्वपूर्ण है कि कौन-सा रत्न किसका शत्रु है तथा किसका मित्र है। इससे कभी-कभी लाभ के बदले हानि का खतरा हो जाता है।

ज्योतिष चन्द्रिका : सितम्बर 89/48

अतः नीचे रत्नों के मित्र व शत्रुओं की जानकारी दी जा रही है। जो पाठकों के लिए अव्यक्त ही लाभकारी

सिद्ध होगी।

रत्न	मित्र	शत्रु	शत्रु
हीरा	पन्ना, नीलम	मूंगा, पुखराज	माणिक्य, मोती
मोती	माणिक्य, पन्ना	हीरा, मूंगा, पुखराज, नीलम	×
मूंगा	माणिक्य, मोती, पुखराज	हीरा, नीलम	पन्ना
पन्ना	माणिक्य, हीरा	मूंगा, पुखराज	मोती
नीलम	पन्ना, हीरा	नीलम, पुखराज	माणिक्य, मोती, मूंगा
माणिक्य	मोती, मूंगा, पुखराज	पन्ना	हीरा, नीलम
गोमेद	पन्ना, नीलम, हीरा	मूंगा, पुखराज	माणिक्य, मोती
लहसुनिया	पन्ना, नीलम, हीरा	मूंगा, पुखराज	माणिक्य, मोती

ज्योतिष चन्द्रिका : नवम्बर फरवरी 89/49

ज्योतिष चन्द्रिका : सितम्बर 89/49

ज्योतिष चन्द्रिका की ओर से—

“तांत्रिकों-मांत्रिकों, चिकित्सा विज्ञानियों और स्वयं भगवानों को खुली चुनौती।”

एक दुःखी पिता ने “नूतन कहानियाँ”—नवम्बर अंक में देश के जाने-माने तांत्रिकों, मांत्रिकों व चिकित्सा वैज्ञानिकों को खुली चुनौती दी है—अपने बच्चे के स्वास्थ्य लाभ के लिए।

उनका घच्चा पिछले 20 महीने से चेतना शून्य पड़ा है। वे अपने इस लाडले बच्चे को होश में लाने के लिए भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान (दिल्ली), जसलोक अस्पताल (बम्बई) तक की खाक छान आये हैं। सभी डाक्टरों ने उन्हें जवाब दे दिया है।

अपने बच्चे को होश में लाने के लिए तांत्रिक, साधू, सन्त, मौलवियों की भी शरण ले चुके हैं, लेकिन सब व्यर्थ, कोई फायदा नहीं हुआ।

बच्चे की बीमारी ने पिता समेत पूरे परिवार को झकझोर दिया है। वे सब उस बच्चे के होश में आने की सलक लिए जी रहे हैं।

उन्हें विश्वास है कि किस्मत में जो लिखा, वह मिलेगा। वैसे वनका कहना है कि बन्होंने आज तक किसी का बुरा नहीं चाहा, उन्होंने खुली चुनौती देकर सबकुछ भगवान पर छोड़ दिया है।

बड़े-बड़े सन्त, औषड़ रोगी ठीक करने आते हैं और ऐलोपैथिक इलाज की दम भी खत्म होने वाली है। जब दवा बेअसर हो जाए तो दुआ असरदार होनी है, परन्तु ऐसी दुआएँ हैं किसकी ?

रोगी का परिवार परिचय

रोगी का नाम :—अमित

पिता :—श्री देवकुमार यादव, बी० ए०, एल०-एल० बी०, विधायक, बाँदा।

निवास :—ग्राम—जाखी

तहसील—ववेरु

जिला—बाँदा

विधायक देवकुमार यादव से नू० क० की बातचीत

सब छोड़ दिया है भगवान पर

नू० क० : अमित की बेहोशी के लिए आप किसे दोषी मानते हैं ?

देवकुमार : इसका सारा दोष मेडिकल कॉलेज के डाक्टरों को जाता है। अगर अमित का एल० पी० टेस्ट किसी सीनियर डॉक्टर ने किया होता, तो वह इस रोग को पहचान लेता। लेकिन एम० बी०-बी० एस० के छात्रों ने गैर जिम्मेदारी से टेस्ट करते हुए दिमाग को ठीक बताया। तत्पश्चात् बड़ी ही लापरवाही से उसका इलाज किया गया।

ज्योतिष चन्द्रिका : सितम्बर 89/50

नू० क० : आप विभ्रायक हैं। आपको तो बी० आई० पी० ट्रीटमेंट मिलना चाहिए।

देवकुमार : मैंने अपने पद के प्रभाव का प्रयोग इसलिए नहीं किया कि कहीं डॉक्टर यह न सोचें कि मैं दवाव-इलाज करवा रहा हूँ। आप जान लीजिए कि जब एक विधायक के साथ डॉक्टर यह व्यवहार करते हैं, तो आम आदमी का भगवान ही मानिक है।

नू० क० : अमित के बेहतर इलाज के लिए आप क्या कर रहे हैं ?

देवकुमार : मैंने भारतवर्ष के प्रख्यात डॉक्टरों से सम्पर्क किया, लेकिन वे इस रोग का निदान नहीं कर पा रहे हैं। मैं अमित के इलाज हेतु रूस, अमेरिका तक जाने को तैयार हूँ। मैं भारत ही नहीं, बल्कि विश्व के सभी डॉक्टरों, साधू-सन्तों, तांत्रिकों को जैलेन्ज देकर कहता हूँ कि किसी भी कीमत में मेरे इस बच्चे को होश में लायें।

नू० क० : अमित की बीमारी का परिवार पर क्या प्रभाव पड़ा ?

देवकुमार : यह मत पूछिए ! वस, कल्पना कीजिए। मेरा बेटा बहुत ही कुशाग्र बुद्धि का है। उसे पशु-पक्षियों से बड़ा लगाव है। उसने एक तोता पाला था। जब वह अस्पताल में भर्ती हुआ, तब उस तोते ने खाना-पीना छोड़ दिया और जिस दिन अमित का ऑपरेशन हुआ, उसी दिन तोते ने प्राण त्याग विधि।

मेरे पिताजी के तो प्राण ही अमित में बसे थे। उन्हें यह नहीं बताया गया था कि अमित बेहोश है, लेकिन जाने कैसे उन्हें पूरी बात पता चल गयी और इसी गम ने उनके प्राण ले लिये।

नू० क० : एनोपैथिक में इस बेहोशी का इलाज डेढ़ वर्ष तक है। उसके बाद क्या करेंगे।

देवकुमार : मैंने सब कुछ भगवान पर छोड़ दिया है। किस्मत में जो लिखा है, वो मिलेगा। वैसे मैंने आज तक किसी का बुरा नहीं चाहा, इसलिए विश्वास है कि भगवान मेरे साथ म्याप करेगा।

डॉ० मणहर हुसैन कहते हैं

इससे अच्छा ट्रीटमेंट नहीं दिया जा सकता

नू० क०—अमित को क्या रोग है ?

डॉक्टर—उसे ट्यूबट कुलेसिस मेनिकजाइटिस है।

नू० क०—यह क्या रोग है ?

डॉक्टर—दिमाग के चारों तरफ जो सिलिजियाँ होती हैं, उसमें ट्यूबट कुलेसिस का इन्फेक्शन हो जाता है, जिसकी वजह से दिमाग में हाइड्रोसिफलिस हो जाता है। हाइड्रोसिफलिस में दिमाग में पानी जमा हो जाता है और दिमागी नसों में सूजन आ जाती है।

नू० क०—इसका परिणाम क्या होगा ?

डॉक्टर—मष्तिष्क में पानी एकत्र होने से दिमाग पर दबाव पड़ता है। फलतः दिमाग डबेज होकर निष्क्रिय हो जाता है। तत्पश्चात् व्य. स्त चेतनाशून्य हो जाता है।

नू० क०—यह बेहोशी कब तक रहती है ?

डॉक्टर—इस रोग के निवारण हेतु हम यहाँ 'शण्ट ऑपरेशन' करके दिमाग में एक नली लगा देते हैं, जो

ज्योतिष चन्द्रिका : सितम्बर 89/51

एकत्र हो रहे पानी को खींचकर पेट तक पहुँचा देती है। उसके बाद हम ट्यूबर कुलेसिस का इलाज करते हैं, जो सामान्यता डेढ़ साल से अधिक नहीं चलता। उस अवधि में टी० बी० ठीक हो जाती है।

नू० क०—अमित के ठीक होने पर उसकी बेहोशी भी खत्म हो जायेगी ?

डॉक्टर—हमारे दिमाग में 30 करोड़ कोशिकाएँ हैं। जब वे सुचारु रूप से काम करती हैं, तभी व्यक्ति मानसिक रूप से स्वस्थ होता है। दिमाग की ट्यूबर कुलेसिस ठीक हो जाने के बाद ही पता चलता है कि दिमाग कितना मँमेज हुआ है। वैसे अधिकांश बेहोश मरीज कोमा में ही खत्म हो जाते हैं। मेरे इस पेशे के दस साल में यह पहला केस है, जिसका रोगी कुछ सुधर रहा है। बाकी प्रकृति और खुदा के हाथ में है।

नू० क०—इसकी इलाज पद्धति क्या है ?

डॉक्टर—रीढ़ की हड्डी (ए० पी० टेस्ट) का द्रव्य निकालकर हम जाँच करके पता लगा लेते हैं कि दिमाग में क्या खराबी है। उसके बाद केट स्केनिंग करके यह पता करते हैं कि दिमाग में पानी भरा है या नहीं। यदि पानी भरा है तो उसका शण्ट ऑपरेशन करके पानी निकाल देते हैं।

नू० क०—अमित का एल० पी० टेस्ट लिया गया था, जिसके परीक्षण में यह रोग डाइग्नोस नहीं हो पाया, जबकि यह रोग उसे था।

डॉक्टर—कभी-कभी जाँच रिपोर्ट गलत भी हो जाती है। हम आदमी हैं भगवान नहीं।

नू० क०—अमित के पिता का कहना है कि उनके बेटे की बीमारी के जिम्मेदार मेडिकल कॉलेज के डॉक्टर हैं जो उसका डाइग्नोस नहीं कर पाये और उसे एनीमा लगा दिया।

डॉक्टर—इस बारे में मैं कुछ नहीं कह सकता। मरीज ठीक हो जाता, तो आप तारीफ करते। उसके साथ क्या हुआ, मैं नहीं जानता। यह जरूर जानता हूँ कि इससे अच्छा इलाज कहीं नहीं हो सकता।

ज्योतिष चन्द्रिका की ओर से तंत्रविद् समाज, साधक समाज, योगी पुरुषों से निवेदन है कि इस रोगी का निदान कर, इस धर्म की प्रतिष्ठा को बनाकर इस परिवार को इस विद्या के प्रति विश्वास दिलाकर मंत्र-शक्ति या तंत्र-शक्ति का प्रश्न दें।

जैन धर्म—उद्भाव और विकास

□ ज्योतिष चन्द्रिका

'जैन' शब्द 'जिन' से बना है जिनका अर्थ है—'विजेता' अर्थात् जिसने समस्त इन्द्रियों और अज्ञान पर विजय प्राप्त करके सम्यक ज्ञान पा लिया है। जैन मुनियों को इसलिए 'जिन' कहा जाता था क्योंकि उन्होंने सांसारिक बंधनों से मुक्ति का रास्ता ढूँढ लिया था।

प्रायः महावीर स्वामी को जैन धर्म का प्रवर्तक माना जाता है जबकि वास्तव में वह 24वें तथा अन्तिम जैन तीर्थंकर थे। जैन धर्म के अनुयायियों का विश्वास है कि उनका धर्म भी अनादि है और सृष्टि के साथ ही पैदा हुआ। उनके अनुसार राजर्षि ऋषभदेव उनके प्रथम तीर्थंकर थे। वैदिक साहित्य में भी ऋषभदेव का नाम सम्मानपूर्वक आता है किन्तु अन्तिम तीर्थंकर महावीर का नाम विशेष रूप से इसलिए लिया जाता है क्योंकि समय के साथ-साथ उन्होंने धर्म को एक निश्चित सूत्र में बाँधा। सत्य, अहिंसा अस्तेय (संयम), अपरिग्रह (त्याग) और ब्रह्मचर्य का पाठ पढ़ाकर मोक्ष का मार्ग दिखाया।

जैन धर्म के 24 तीर्थंकरों के नाम इस प्रकार हैं—

1. ऋषभदेव, 2. अजित, 3. सम्भव, 4. अभिनन्दन, 5. सुमति, 6. पद्मप्रभु, 7. सुपाशवं, 8. चन्द्रप्रभु, 9. पुण्यवन्त या सुविधि, 10. शीतल, 11. श्रेतांग, 12. वासुपूज्य, 13. विमल, 14. अनन्त, 15. धर्म, 16. शान्ति, 17. कुन्ध, 18. अरा, 19. मल्लिनाथ, 20. मुनिमुत्तम, 21. नमि, 22. नेमि अथवा नरिष्ठनेमि, 23. पार्श्वनाथ और 24. वर्द्धमान महावीर।

वर्द्धमान महावीर : जीवन और उद्देश

इक्ष्वाकु वंश के क्षत्रियों में अनेक शाखाएँ थीं। उन्हीं में जातवंशीय राजा सिद्धार्थ की राजधानी बिहार प्रान्त के कुण्डलपुर नगर में 599 ई० पू० की रानी त्रिशला देवी की गोद में एक सहान आत्मा ने जन्म लिया। यह महान आत्मा भी—भगवान् महावीर। माता-पिता ने इनका नाम वर्द्धमान रखा। राजकुमार वर्द्धमान ने युवावस्था तक क्षत्रियों की समस्त कलाओं का अभ्यास कर लिया था। माता के आग्रह से इन्होंने राजा समरवीर की कन्या यशोदा देवी से विवाह भी किया जिससे एक कन्या हुई—प्रियदर्शना। किन्तु गृहस्थ जीवन उन्हें बार-बार एक ब्रन्धन, एक मायाजाल लगता जिससे मुक्त होने के लिए उनकी अन्तरात्मा झकझोरती रहती।

जब राजकुमार वर्द्धमान 28 वर्ष के थे, तब उनके माता-पिता की मृत्यु हुई। घर त्यागकर 'मुनि' बनने की उनकी इच्छा फिर भी न दबी किन्तु भाई नन्दिबर्द्धन के आग्रह पर दो वर्ष और उन्हें घर रहना पड़ा। 30 वर्ष की आयु में घर छोड़कर वर्द्धमान ने दीक्षा ले ली। दीक्षा लेते ही उन्हें 'मनःपर्याय ज्ञान' (हृदय के मन की बात जानने की शक्ति) की प्राप्ति हो गयी। इन्द्रियों और मन पर संपूर्ण विजय की त्रिडि के लिए उन्होंने साढ़े बारह वर्ष तक घोर तपस्या की। इस दौरान कभी-कभी छह महीने तक वे निर्जल उपवास करते रहे तो कभी-कभी महीनों तक खड़े होकर ध्यान करते रहे।

तपस्या के दौरान उन्हें घोर कष्ट भी सहन करने पड़े। एक ग्वाले ने उनके कान में कीलें डोक दीं। साँप, बिन्दू तथा दूसरे जानवरों ने उन्हें भयंकर कष्ट दिये। बाँझी, बघाँ, लू, ओले—सबने उन्हें डिगाने के भरसक प्रयास

किये किन्तु वे पर्वत की भाँति अविचल रहे। इन्द्र ने इस धैर्य तथा मनोबल को देखकर ही उन्हें 'महावीर' कहा। अन्ततः तपस्या पूरी हुई और महावीर सभी इच्छाओं-वासनाओं से मुक्त होकर बीतरागी, सर्वज्ञ एवं महासिद्ध बन गये।

भगवान् महावीर ने विश्व में जीवदया, अहिंसा और सदाचार के कल्याणमय धर्म का उपदेश देना शुरू किया। इन्द्रभूत जैसे प्रख्यात विद्वानों और बड़े-बड़े राजा-महाराजाओं ने उनका शिष्यत्व ग्रहण किया। राजगृह, श्रावस्ती, वैशाली जैसे प्रमुख नगरों में भगवान् ने चातुर्मास्य (चार माह तक एक ही जगह ठहरकर धर्म का प्रवचन करना) किया।

527 ई० पू० को 72 वर्ष की आयु में कार्तिक अमावस्या को पावापुरी (पटना के निकट) में उन्होंने निर्वाण प्राप्त किया। इसी वर्ष से जैनियों का 'वीर निर्वाण सम्बत्' प्रारम्भ होता है।

सन्देश तथा मानव-संस्कृति को देन

समाज में दया, परोपकार, अहिंसा तथा जीवन में त्याग, सहनशीलता, तप एवं संयम—भगवान् महावीर ने मनुष्य जाति को यही संदेश दिया। उन्होंने मानव-संस्कृति को अहिंसा त्याग तथा तप का जो वरदान दिया, वह अनेक जातियों के लिए आदर्श रहा है। अहिंसा को इतने व्यापक रूप में सबसे पहले जैन धर्म ने ही ग्रहण किया। जैन धर्म ने निम्नलिखित बातों पर बल दिया—

1. जगत् आदि है और इसके सभी पदार्थ नश्वर हैं।
2. आत्मा मोक्ष-प्राप्ति का एक सोपान है और जीव ही आत्मा है। आत्मा शुद्ध और शरीर अशुद्ध है। मिथ्या दर्शन, अव्यवस्था और प्रमाद के कारण ही आत्मा शरीर में बँधती है।
3. मन आत्मा से भिन्न है।
4. मोह-माया और कर्मों के प्रति आकर्षण ही कर्म-बन्धन का मूल कारण है।
5. कर्मों से मुक्ति पाना ही परम ध्येय है।
6. मुक्त आत्मा ही श्रेष्ठ है।
7. सम्यक श्रद्धा, सम्यक ज्ञान और सम्यक आचरण—ये त्रिरत्न भी मोक्ष-प्राप्ति के साधन हैं।
8. जैन धर्म के अनुसार मनुष्य का लक्ष्य कैवल्य पद (मोक्ष) की प्राप्ति है। पूर्व संचित एवं वर्तमान कर्मों से छुटकारा पाना ही मोक्ष है। इसकी प्राप्ति के लिए संसार का त्याग करना आवश्यक है। जैन मुनियों के अनुसार जीव अपने पुरुषार्थ द्वारा ही मुक्ति प्राप्त करता है।

अहिंसा को परम धर्म मानने वाले जैन साधु अथवा श्रावक पानी भी छानकर पीते हैं। जो जैन बिलकुल शाकाहारी होते हैं, वे उठते-बैठते, चलते-फिरते इस बात का विशेष ध्यान रखते हैं कि कहीं जीव की हिंसा न हो। वे संख्या से पूर्व ही भोजन कर लेते हैं। कीटाणुओं के प्रवेश को रोकने के लिए जैन साधु हर समय मुखपट्टिका बाँधे रखते हैं।

जैन धर्म के अनुयायी अपने तीर्थंकरों को पूज्य मानते हैं। उनका ऐसा विश्वास है कि उनके तीर्थंकर परम-धाम में निवास करते हैं। इस श्रेष्ठ पद को उन्होंने अपने तप के बल पर ही प्राप्त किया है। जैन मन्दिरों में इन्हीं तीर्थंकरों की मूर्तियों की पूजा होती है। तीर्थ का अर्थ है—भवसागर को पार करना अर्थात् जिसने इसे पार कर लिया हो, उसे तीर्थंकर कहते हैं।

मत और सम्प्रदाय

जैन धर्म के मुख्य दो ही सम्प्रदाय हैं—दिगम्बर और श्वेताम्बर। किन्तु बीस पंच, तेरह पंच नामक सम्प्रदाय भी मिलते हैं, जो हैं तो सामान्य किन्तु उनके महत्व को नकारा नहीं जा सकता।

दिगम्बर-श्वेताम्बर मतभेद

भगवान महावीर के पश्चात् जैन धर्म की परम्परा से पता लगा है कि आचार्य भद्रबाह के समय तक दिगम्बर और श्वेताम्बर में विशेष मतभेद नहीं था। इसी सन् की प्रथम शताब्दी के आसपास इन दोनों परम्पराओं की मान्यताओं में अन्तर आया। इनके परस्पर मतभेद निम्नलिखित हैं—

1. दिगम्बर सम्प्रदाय में मोक्ष के लिए नग्नता को मुख्य बताया गया है, जब कि श्वेताम्बर मोक्ष पाने के लिए इसे आवश्यक नहीं मानते।
2. दिगम्बर स्त्री-मुक्ति का निषेध करते हैं जब कि श्वेताम्बर सम्प्रदाय में 10वें तीर्थंकर मल्लिनाथ द्वारा स्त्री-मुक्ति को स्वीकारा गया है।
3. दिगम्बर मत वाले श्वेताम्बर सम्प्रदाय द्वारा मान्य 'आगम' ग्रन्थों की प्रामाणिकता नहीं मानते। चार वेदों की तरह उनके 'अनुयोग' हैं।
4. अधिकतर दिगम्बरी मन्दिरमार्गी हैं और मूर्तिपूजा में विश्वास रखते हैं। अधिकतर श्वेताम्बरी स्थानकवासी होते हैं और जैन साधुओं में ही भगवान महावीर की छवि महसूस करते हैं और उन्हें ही पूज्य मानते हैं। हालांकि कुछ श्वेताम्बरी मूर्तिपूजा भी करते हैं।
5. दिगम्बर सम्प्रदाय में सर्वज्ञ भगवान कैवल्यज्ञानी हो जाये पर कबलाहार नहीं करते।

दिगम्बर सम्प्रदाय

जैन धर्म में दिगम्बर सम्प्रदाय को मानने वालों की संख्या अब भी काफी है। इनके मन्दिरों में भगवान महावीर तथा अन्य तीर्थंकरों, साधुओं की जो मूर्तियाँ स्थापित की गयी हैं। वे कलात्मक तथा नग्नारूपा में हैं। इन्हीं को इस मत के लोग पूज्य तथा जैन-दर्शन की चरम साधना का प्रतीक मानते हैं।

दिगम्बर मतাবलम्बियों के कई संघ हैं। वि० सं० 26 में प्रख्यात आचार्य अर्हद्वलि ने इन्हें चार भागों में बाँटा—नन्दिसंघ, सेनसंघ, सिंहसंघ तथा देवसंघ। इन संघों के अनुयायी वृद्धों, श्राद्धियों, सिंघों की गुफाओं तथा गणिकाओं के यहाँ चातुर्मास की तपस्या करते थे।

दिगम्बर सम्प्रदाय में कुछ भूमिपूजा-विरोधी लोगों के सम्प्रदाय भी पाये जाते हैं। तारणपंथी मूर्तिपूजा के विरोधी हैं। इस पंथ के अनुयायी तारण स्वामी (1448-1515) के 14 ग्रन्थों की पूजा करते हैं।

श्वेताम्बर और स्थानकवासी सम्प्रदाय

जहाँ दिगम्बर साधु नग्नारूपा में रहते थे, वहीं दूसरी ओर इस सम्प्रदाय के लोग सफेद वस्त्र धारण करते हैं। अधिकांश श्वेताम्बरी स्थानकवासी होते हैं। इनकी समस्त धार्मिक क्रियाएँ स्थानक में होती हैं। स्थानक वह पवित्र भवन अथवा स्थल है, जहाँ श्वेतवस्त्रधारी साधु आकर ठहरते हैं और प्रतिदिन धर्म का प्रवचन करते हैं। ये साधु पदच यात्रा करते हुए एक स्थान से दूसरे स्थान पल जाते हैं तथा घर-घर जाकर आहार ग्रहण करते हैं। सूर्यास्त होने से पूर्व

ही ये भोजन कर लेते हैं। सूर्यास्त के बाद साधुओं के दर्शन करने के लिए महिलाएँ स्थानक में नहीं जा सकतीं और इसी तरह पुरुष भी साध्वियों (महिला साधु) के दर्शन करने नहीं आ सकते।

‘नवकार मन्त्र’ इनका महामन्त्र है और ‘पर्युषण’ इनका महापर्व। ‘पर्युषण’ महापर्व निरन्तर सात दिनों तक मनाया जाता है, जिस अवधि के दौरान जैन लोग फल अथवा किसी भी प्रकार की हरी सब्जियाँ नहीं खाते। प्रति-दिन स्थानक में जाकर लोग ‘आमायिक’ (48 निमट की ध्यानावस्था तथा उपासना का एक ढंग) करते हैं। ‘सामायिक’ घर पर भी सुबह-शाम की जा सकती है। आठवें दिन लोग ‘सम्प्रतसरी पर्व’ मनाकर ‘पर्युषण’ महापर्व का समापन करते हैं और वर्ष भर में जाने-अनजाने की गयी गलतियों और मानहानि के लिए परस्पर क्षमा-याचना करते हैं।

श्वेताम्बर सम्प्रदाय में कुछ मतावलम्बी मूर्तिपूजा में भी विश्वास रखते हैं जिन्हें पुजेरा, मूर्तिपूजक, देरावासी अथवा मंदिरमार्गी कहते हैं। इनके विभिन्न 84 गच्छ (मठ) हैं, जिनमें उपकेश, तपा, पायचन्द, खरतर, पूनमिया, अंबल आगक्रिक, आदि प्रमुख गच्छ हैं। स्थानकवासी श्वेताम्बरी साधुमार्गी होते हैं।

बीस पंथ

जिस तरह श्वेताम्बर सम्प्रदाय में मठवासी साधुओं को ‘जती’ या ‘श्रीपूज्य’ कहते हैं और वनवासियों को ‘सवेगी’, उसी तरह दिगम्बर में भट्टारक मठवासी और नग्न सानु वनवासी परम्परा के बचे हुए चिह्न-मात्र हैं। यद्यपि दिगम्बर सम्प्रदाय में मठवासी नामक संगठन का अलग से उल्लेख नहीं मिलता।

प्रमाणों से पता लगता है कि दिगम्बर सम्प्रदाय के साधु मठवासी होने के बावजूद नग्न रहते थे। 16वीं शताब्दी के विद्वान श्रुतासागर ने लिखा है कि कलिकाल में म्नेच्छ इन यतियों को नगनावस्था में देखकर उपद्रव मचाते थे। आचार्य वसन्तकीर्ति स्वामी ने समय की नाजुकता को देखते हुए मुनियों को उपदेश दिया कि धार्मिक प्रवचन के दौरान वे चटाई, टाट, टाट आदि से अपने शरीर को ढक लें और बाद में चाहें तो गुप्त रूप से वस्त्र उदार सकते हैं। जैसे-जैसे कलिकाल बढ़ता जा रहा था, लोगों की निगाहें सूक्ष्मता की अपेक्षा स्थूलता की ओर जाने लगी थीं। नग्न अंगों को स्थूल रूप से देखने पर यशलीलता के बढ़ जाने के भय से वचने के लिए वसन्तकीर्ति स्वामी ने यह उपदेश दिया था। चित्तोड़ की गढ़ी के भट्टारक वसन्तकीर्ति स्वामी के अनुयायी ही ‘बीसपंथी’ कहलाये।

बीसपंथी अपने भट्टारकों को ही पूज्य और गुरु मानते हैं और मन्दिरों में भैरव आदि देवों की मूर्तियों की पूजा करते हैं। बीसपंथी भट्टारक मन्दिरों को जीर्णोद्धार कराते, मुनियों को आहार देते, दानशालाएँ खुलवाते, गद्दे तकियों पर बैठते, पालकी में छत्र-चँवर की छाया में चलाते।

तेरह पंथ

तेरहपंथी प्राचीन काल से चले आ रहे कठोर धार्मिक नियमों का पालन करने को ही धर्म मानते हैं। इस सम्प्रदाय के लोग चैत्यवासी साधुओं की अपेक्षा वनों में वास या तपस्या करने वाले मुनियों को ही ‘सच्चा साधु’ मानते हैं। स्थानकवासियों के ‘तेरापथ’ से यह पथ बिल्कुल भिन्न है।

भगवान की पूजा

—कुँवरपाल गुप्ता

विश्व के सभी मतों की यह मान्यता है कि भगवान एक है। उसके नाम और रूप अनेक हो सकते हैं। परन्तु वह सर्व-व्यापक है, सर्व-शक्तिमान है और सर्व-नियन्ता है। जो लोग उसके नाम रूप अथवा पूजा-विधि को लेकर झगड़ा करते हैं, वे उसको तत्त्वतः न तो जानते हैं और न मानते हैं।

मनुष्य अपने परिवार, संस्कार और विचार के अनुसार भगवान की पूजा करने की विधि निश्चित करता है। कुछ लोग नियमित रूप से मन्दिरों, मस्जिदों, गुरुद्वारों अथवा गिरजाघरों में जाकर पूजा करते हैं, कुछ कभी-२ विशेष उत्सवों पर वहाँ जाते हैं और कुछ अपने घरों में ही इसे सम्पन्न करते हैं। क्या देवी-देवताओं की मूर्तियों के दर्शन करना, आरती उतारना, धार्मिक ग्रन्थों का पाठ करना अथवा भगवान की स्तुति करना ही पूजा है और जो लोग उक्त कार्य नहीं करते या नहीं कर पाते, क्या वे भगवान की पूजा नहीं करते? इसका सही उत्तर तभी मिलेगा जब हम भगवान और पूजा के वास्तविक स्वरूप को समझ जायें।

भगवान सर्व-व्यापक है, सर्व-मय है, एक है

प्रायः लोग यह मानकर सन्तुष्ट हो जाते हैं कि वे मन्दिर में जाकर एक बार, दो बार या तीन बार भगवान के दर्शन कर आये। वे यह नहीं जानते कि भगवान उनके दर्शन चौबीसों घण्टे करता है, उनके समस्त कार्य-कलापों को देखता है और अन्तर्यामी होने के कारण उनके विचारों और भावों को भी जानता है। भगवान से कुछ छिपा नहीं है।

किसी गुरु के दो चेले थे। दोनों की शिक्षा-दीक्षा के पश्चात् गुरु जी ने देखना चाहा कि अभी उन्हें ब्रह्म-ज्ञान हुआ या नहीं। गुरु जी ने प्रसाद के रूप में दोनों को एक-२ लड्डू दिया और कहा कि इसे ऐसे स्थान पर खाकर आना जहाँ कोई तुम्हें देख न रहा हो, सौय तक मेरे पास आना। एक चला जंगल में निर्जन स्थान पर चला गया और वहाँ किसी को न देखकर अपने ऊपर चादर लपेट जिससे कोई पक्षी भी न देख सके, लड्डू खाकर गुरु जी के पास लौट आया। दूसरा चेला बिना लड्डू खाये लौट आया। गुरु जी के पूछने पर पहले चेले ने बड़े गर्व से बताया कि उसने लड्डू कहाँ खाया। गुरु जी चुप रहे। दूसरे चेले ने कहा, मैं गुप्त से गुप्त और निर्जन से निर्जन स्थान गया और जैसे ही खाने के लिए लड्डू निकाला तो मुझे ऐसा अनुभव हुआ कि भगवान देख रहे हैं। मैं लड्डू नहीं खा सका। अतः मैं तो बिना लड्डू खाये ही आ गया। गुरु जी ने दूसरे चेले से कहा कि तुम्हें सच्चा ब्रह्म-ज्ञान प्राप्त हो गया। पहला चेला अपने अज्ञान पर सिर झुकाये बैठा

अर्जुन ने भगवान श्री कृष्ण से पूछा :-

कथं विद्यामहं योगिस्त्वां सदा परिचिन्तयन् ।

केषु केषु च भावेषु चिन्तयोऽसि भगवन्मया ॥ (गीता १०-१७)

हे योगिन ! मैं सदा चिन्तन करता हुआ आपको किस प्रकार जानूँ और हे भगवान ! किन किन भावों में आप मेरे द्वारा चिन्तन करने योग्य हैं ?

श्री भगवान ने उत्तर दिया :-

अहमात्मा गुडाकेश सर्वभूताशय स्थितः ।

अहमादिश्च मध्यं च भूतानामन्त एव च ॥ (गीता १०-२०)

हे गुडाकेश ! मैं सब प्राणियों के हृदय में स्थित आत्मा हूँ और भूतों का आदि, मध्य और अन्त भी मैं ही हूँ ।

अपनी अनेक विभूतियों का वर्णन करने के पश्चात् भगवान ने कहा,

यद्यद्विभूतिमत्सत्त्वं श्रीमदूर्जितमेव वा ।

तत्तदेवावगच्छ त्वं मम तेजोऽशसंभवम् ॥

अथवा बहुनैतेन किं ज्ञातेन तरार्जुन ।

विष्टम्याहमिदं कृत्स्नमेमांशेन स्थितो जगत् ॥ (गीता १०-४१, ४२)

जो जो भी विभूतियुक्त, श्रियुक्त और शक्तियुक्त वस्तु है, उस उस को तू मेरे तेज के अंश से ही उत्पन्न हुई जान । अथवा हे अर्जुन ! इस बहुत जानने से तुम्हारा क्या प्रयोजन है, मैं सम्पूर्ण जगत् को एक अंश मात्र से धारण करके स्थित हूँ ।

मनुष्य मात्र में परमेश्वर की विभूति है । मनुष्य में जो श्री, शक्ति, ऐश्वर्य, पराक्रम, तेज, बल, विद्या आदि हैं, उन्हें परमेश्वर का अंश जानना चाहिए । परमेश्वर की अभिव्यक्ति गुणों विकास से होती है । जगत् में गुणों की प्रशंसा और पूजा होती है । सर्वत्र एक ही ब्रह्म है और उसी की सत्ता है ।

स सर्वस्मै विपश्यति, यच्च प्राणति यच्च न ।

तमिदं निगतं सहः स, एष एकवृदेक एव ।

सर्वं अस्मिन् देवा एकवृत्तो भवन्ति ॥ अथ० १३/४/१६, २१)

वह परमेश्वर प्राणवान—श्वास लेने वाले और जड़ - बिना श्वास के रहने वाले सब के भाँति देखता है । विजय की शक्ति वही है । वह एक है, केवल एक है, सर्वत्र एक ही है । सब शक्ति और शक्तियाँ उस एक से हैं और एक में मिली रहती हैं । इसी भाव के अनुसार सन्त और भक्त अपने भगवान को सर्वत्र देखते हैं । सन्त शिरोमणि गोस्वामी तुलसीदास कण-कण में अपने इष्ट के दर्शन होते थे ।

जड़ चेतन जग जीव जत सकल राम मय जानि ।
 बंदउँ सब के पद कमल सदा जोरि जुग पानि ॥ (रा०च०मा०/७-ग)
 सीय राम मय सब जग जानी । कहउँ प्रनाम जोरि जुग पानी ॥
 (रा०च०मा०/७-२)

उपर्युक्त कथन से यह सिद्ध हो गया कि भगवान केवल मन्दिरों में अथवा अन्य पूजा-स्थलों में ही नहीं रहते । अतः यह कहना भी ठीक नहीं है कि जो लोग मन्दिरों, तीर्थ-स्थलों अथवा पूजा-गृहों में नहीं जाते या जा पाते, वे भगवान को पूजा नहीं करते । इसका अर्थ यह कदापि नहीं है कि मन्दिरों आदि में जाना व्यर्थ है । ऐसे पवित्र स्थानों में जाकर देव-दर्शन करने, प्रसाद चढ़ाने, भजन कीर्तन करने, कथादि सुनने और अन्य धार्मिक कृत्यों को पूर्ण करने से न केवल मन को सन्तोष मिलता है बल्कि चित्त-शुद्धि, प्रेम, सेवा, दया सहिष्णुता आदि सद्गुणों का विकास भी होता है । इसलिए जिन्हें समय और सुविधा है अथवा जो लोग बिना दूसरों को कष्ट पहुँचाये वहाँ जा सकते हैं, उन्हें अवश्य ही नियम-पूर्वक जाना चाहिए । मन्दिर में दर्शन करो । फिर प्रत्येक जीव में प्रभु की भाँकी देखो । ऐसा भाव रखकर जब विवेकपूर्ण व्यवहार होगा तो एक दिन अपने अन्दर ही भगवान के दर्शन होंगे ।

बड़े-बड़े साधु महात्मा जंगलों में, पर्वतों की गुफाओं में रहते हैं । वे सतत आनन्द में मस्त रहते हैं । उनकी शान्ति कभी भंग नहीं होती । कारण यह है कि वे अपने हृदय में जगत-पति, परमेश्वर के दर्शन करते हैं ।

पूजा कर्तव्य-पालन, सेवा और सदाचार से होती है

भगवान को चन्दन-पुष्प अर्पण करना, आरती का गायन करना, घंटी-घड़ियाल बजाना, दीप जलाना, भेंट चढ़ाना और कीर्तन आदि करना पूजा करने की विविध प्रक्रियायें हैं । इन सब से मर्यादित पूजा होती है । सच्ची पूजा अथवा पुष्टि पूजा तो तब होती है जब सब में भक्ति-भाव जागता है; जब यह अनुभव होने लगता है कि ईश्वर सब में है और मैं जो कुछ भी करता हूँ, उसको भगवान देखते हैं । ऐसा व्यक्ति कभी पाप-कर्म नहीं करता । उसका प्रत्येक व्यवहार भक्तिमय बन जाता है । उसमें दम्भ, अभिमान, छल-कपट आदि अवगुण नहीं रहते । ऐसे विशुद्ध व्यवहार से ही शान्ति मिलती है ।

पूजा का सीधा सम्बन्ध व्यवहार से है । जिसका व्यवहार शुद्ध नहीं है, वह मन्दिर में जाकर भी पूजा नहीं करता । जिसका व्यवहार शुद्ध है, वह जहाँ बैठा है, वहीं मन्दिर है और वहीं पूजा करता है । पूजा और व्यवहार में अन्तर नहीं है । ऐसा नहीं हो सकता कि अमुक समय पूजा का और अमुक समय जगत से व्यवहार करने का । खाते-पीते, यात्रा करते, कार्यालय में, दुकान में घन्था करते सर्व-काल में और सर्व-स्थलों में पूजा करनी है ।

भगवान का स्मरण करते-२ घर का सब काम करो। सब काम भगवान के लिए ही हो रहे हैं, ऐसा समझकर काम करो तो भगवान आप की पूजा से प्रसन्न होंगे।

ये तु सर्वाणि कर्माणि मयि संयस्य मत्पराः ।
अनन्ये नैव योगेन मां ध्यायन्त उपासते ॥
तेषामहं समुद्धृती मृत्यु संसार सागरात् ।
भवामि नचिरात्पार्थ मय्यावेशित चेतसाम् ॥ (गीता १२/६, ७)

(परन्तु जो समस्त कर्मों को मेरे अर्पण करके, मेरे परायण रह कर मुझे ही अनन्य योग से चिन्तन करते हुए भजते हैं, हे पार्थ ! उन मुझ में चित्त लगाने वालों का मैं शीघ्र ही मृत्यु रूपी संसार-सागर से उद्धार करने वाला होता हूँ।)

जो महिलायें अपने पति, बच्चों अथवा बड़े-बूढ़ों का काम न करके, उनको कष्ट देकर भगवान की पूजा करने जाते हैं, भगवान उनकी पूजा स्वीकार नहीं करते। इसी प्रकार जो पुरुष अपनी पत्नि और बच्चों के आवश्यक कार्यों की अवहेलना करके पूजा करते हैं, उन की पूजा का भी कोई मूल्य नहीं है। पूजा करने के लिए घर छोड़ने या व्यापार, नौकरी छोड़ने की आवश्यकता नहीं है। केवल अपने ही लिये कर्म करना पाप है, घर के मनुष्यों के लिए कर्म करना व्यवहार है और भगवान के लिये कर्म करना भक्ति या पूजा है। काय तो एक ही है, परन्तु अन्तर भावनाओं से पड़ता है। भावना महत्वपूर्ण है।

कर्मेन्द्रियाणि संयम्य य आस्ते मनसा स्मरन् ।
इन्द्रियार्थान्विमूढात्मा मिथ्याचारः स उच्यते ॥
यस्त्विन्द्रियाणि मनसा नियम्यारभतेऽर्जुन ।
कर्मेन्द्रियैः कर्मयोगमसक्तः स विशिष्यते ॥ (गीता ३/६, ७)

(कर्मेन्द्रियों को रोक कर जो मोहित अन्तःकरण वाला मन से इन्द्रियों के भोगों का चिन्तन करता रहता है वह मिथ्याचारी कहा जाता है। और हे अर्जुन ! जो मनुष्य मन से इन्द्रियों को नियम में करके अनासक्त हुआ कर्मेन्द्रियों के कर्म-योग का आचरण करता है, वह श्रेष्ठ है)

एक मनुष्य मन्दिर में बैठकर माला फेरे और मन में संसार का विचार करे और दूसरा मनुष्य भगवान का स्मरण करते-२ भाड़ू लगावे तो उस माला फेरने वाले से भाड़ू लगाने वाला श्रेष्ठ है।

कर में तो माला फिरे जीभ फिरे मुख मांहि ।
मनुआ तो चहुँदिसि फिरे यह तो सुमरन नांहि ॥

बड़े-बड़े सन्त भी प्रारम्भ में धन्धा करते थे। तामदेव दर्जी का काम करता था। परन्तु कपड़े सिलते समय यह सोचता था कि इन कपड़ों को मेरे भगवान पहनेंगे। कहीं किसी प्रकार की कोई कमी न रह जाये। गोरा कुम्हार घड़ा बनाता था, परन्तु यह सोचकर कि यह मेरे भगवान के

काम आयेगा। कबीर जी बुनकर थे। परन्तु ऐसी चादर बुनते थे कि जिसमें कोई सांठ-गांठ न हो क्योंकि वह सोचते थे कि इसे मेरे भगवान ओढ़ेंगे, उन्हें कोई कष्ट न हो। रैदास जूते बनाते थे, परन्तु इसी भावना से कि इन्हें मेरे भगवान पहनेंगे। इस प्रकार अपने ग्राहक में भी परमात्मा का दर्शन करने से उनको सच्चा ज्ञान प्राप्त हुआ, वे सन्त बन गये और भगवान ने उन की पूजा को स्वीकार किया।

भगवान का स्मरण, पूजन करते-२ जब सम्यक् दृष्टि बन जाती है तो काम, क्रोध, मद, लोभ आदि दुर्गुणों का स्वयं लोप हो जाता है। इन्हीं दुर्गुणरूपी राक्षसों को मारने के लिए श्री राम अवतरित हुए थे। अतः जो भगवान के सच्चे भक्त हैं, वे किसी से वैर-विरोध नहीं करते।

उमा जे राम चरन रत, विगत काम मद क्रोध।

निज प्रभुमय देखहि जगत केहि सन करहि विरोध ॥

(रा०च०म० उत्तर/११२(ख))

दुकान हो, दफ्तर हो, घर हो, कोई स्थान हो, यह समझकर व्यवहार करो कि मेरे भगवान देख रहे हैं। यदि मन्दिर में भगवान का दर्शन करते-२ घर, दुकान, दफ्तर का ध्यान आता है तो घर, दुकान, दफ्तर में काम करते-२ भगवान को क्यों भुलाते हो। जब तक जीवन है व्यवहार करना ही पड़ेगा। यदि आपने व्यवहार में अपने धर्म को नहीं छोड़ा और भगवान का स्मरण करते हुए कर्म किया तो आप का कर्म ही पूजा बन जायेगा।

यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्।

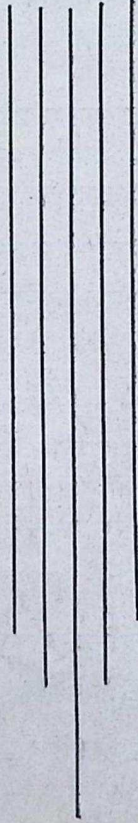
स्वकर्मणा तमभ्यर्च्य सिद्धिं विन्दति मानवः ॥ (गीता १८/४६)

जिससे सर्व भूतों की उत्पत्ति हुई है और जिससे यह सारा जगत व्याप्त है उसको अपने कर्म से पूजकर मनुष्य सिद्धि को प्राप्त करता है।

भगवान की सच्ची पूजा कर्तव्य-पालन, सेवा और सदाचार से होती है।

लेखक श्री कुँवरपाल गुप्ता, एम.ए., एम.एस. (यू.एस.ए.), “श्री हरि गीता” (श्रीमद्भगवद्गीता का पद्यानुवाद) तथा “गीता-ज्ञान” (गीता की व्यावहारिक टीका) के यशस्वी रचयिता ब्रह्मलीन म० पंडित दीनानाथ भार्गव ‘दिनेश’ के शिष्य हैं। इस समय वह ‘दिनेश जी’ द्वारा स्थापित श्री गीता-रामायण सभा, ६७/३, दरियागंज, नई दिल्ली-११०००२ के संचालक एवं श्रीराम मन्दिर समिति, मयूर विहार, फेज-११, दिल्ली के अध्यक्ष हैं तथा दोनों स्थानों पर गीता व रामायण पर साप्ताहिक प्रवचन करते हैं।

शुभकामनाओं सहित



रेनबो स्टील्स लिमिटेड

उच्च श्रेणी के स्टील-इंगट्स निर्माता

मेरठ रोड, मुजफ्फरनगर

फोन : ६७३४, ४९४८ (फैक्ट्री) ★ (निवास) ४९८८

गणेश कवच

और उसकी महिमा

ईश त्वां स्तोतुमिच्छामि ब्रह्मज्योतिः सनातनम् । निरूपितुमशक्तोऽहमनुरूपमरीहकम् ॥
 प्रवरं सर्वदेवानां सिद्धानां योगिनां गुरुम् । सर्वस्वरूपं सर्वेशं ज्ञानराशिस्वरूपिणम् ॥
 अव्यक्तमक्षरं नित्यं सत्यमात्मस्वरूपिणम् । वायुतुल्यातिर्निलिप्तं चाक्षतं सर्वसाक्षिणम् ॥
 संसारार्णवपारे च मायापोते सुदुर्लभे । कर्णधारस्वरूपं च भक्तानुग्रहकारकम् ॥
 वरं वरेण्यं वरदं वरदानामपीश्वरम् । सिद्धं सिद्धिस्वरूपं च सिद्धिदं सिद्धिसाधनम् ॥
 ध्यानातिरिक्तं ध्येयं च ध्यानासाध्यं च धार्मिकम् । धर्मस्वरूपं धर्मज्ञं धर्मधर्मफलप्रदम् ॥
 बीजं संसारवृक्षाणामङ्कुर च तदाश्रयम् । स्त्रीगुणगुंसकानां च रूपमेतदतीन्द्रियम् ॥
 सर्वाद्यमग्रपूज्यं च सर्वपूज्यं गुणार्णवम् । स्वेच्छया सगुणं ब्रह्म निर्गुणं चापि स्वेच्छया ॥
 स्वयं प्रकृतिरूपं च प्राकृतं प्रकृतेः परम् । त्वां स्तोतुमक्षमोऽनन्तः सहस्रवदनेन च ॥
 न क्षमः पञ्चवक्त्रश्च न क्षमश्चतुराननः । सरस्वती न शक्ता च न शक्तोऽहं तव स्तुतौ ॥
 न शक्ताश्च चतुर्वेदाः के वा ते वेदवादिनः ॥

‘रविनन्दन ! इस कवच की बड़ी महिमा है।’ शनैश्चर देव के विनयपूर्वक वचन सुनकर सजल जलधरवपु श्रीविष्णु ने कहा -- ‘दस लाख जाप करने से कवच सिद्ध हो जाता है। कवच सिद्ध कर लेने पर मनुष्य मृत्यु पर विजय प्राप्त करने में समर्थ हो जाता है। यह सिद्ध - कवच धारण करने पर मनुष्य वाग्मी, चिरंजीवी, सर्वत्र विजयी और पूज्य हो जाता है। इस मालामन्त्र तथा कवच के प्रभाव से मनुष्य सारे पातकोप-पातक ध्वस्त हो जाते हैं। इस कवच के शब्द-श्रवणमात्र से ही भूत-प्रेत, पिशाच, कूष्माण्ड, ब्रह्मराक्षस, डाकिनी, योगिनो, बेताल आदि बालग्रह, ग्रह तथा क्षेत्रपाल आदि दूर भाग जाते हैं। कवचधारी पुरुष को आधि (मानसिक रोग), व्याधि (शारीरिक रोग) और भयप्रद शोक स्पर्श नहीं कर पाते।’

ज्योतिष चन्द्रिका : सितम्बर 89/63

Attention : Advertisers

Advertise your Product through "JYOTISH CHANDRIKA" which is read all over the Country by selected gentry. Hurry ! Do not debar your Product from being marketed through advertisement to Jyotish Chandrika at most genuine and reasonable rates.

Schedule of Rates

A. Title Page	a. Four Colour	...	...	4000/-
	b. Single Colour	...	...	2500/-
B. Title Page (Inside)				
	a. Four Colour	...	...	3000/-
	b. Single Colour	...	...	1800/-
C. Inside Page (ordinary)				
	a. Full Page	...	...	1200/-
	b. Half Page	...	...	700/-
	c. quarter Page	...	...	400/-

Note :- Please send the matter for advertisement duly typed and monogram (if any) along with A/c payee Demand Draft drawn in favour of "Jyotish Chandrika" Payable at New Delhi or Muzaffar Nagar at following address :-

Advertisement Cell
Jyotish Chandrika
24-A, Pocket-A,
Mayur Vihar Phase-II
Delhi-110091

सदस्यता फार्म

- ❖ आधुनिक युग विज्ञान और तकनीक का युग है । ज्योतिष शास्त्र विज्ञान और तकनीक से सीधे-सीधे जुड़कर आज विश्व के पटल पर विकासमान है ।
 - ❖ “ज्योतिष चन्द्रिका” विज्ञान और तकनीक की धाराओं से मिलकर प्रतिमास प्रकाशित हो रही है ।
 - ❖ इसके वार्षिक, आजीवन सदस्य बनकर अपने रुचिकर विषय का विकास करें । विश्वास कीजिए “ज्योतिष चन्द्रिका” ही एक ऐसी पत्रिका है जिसे आप रद्दी में नहीं बेच पाएँगे । इसका हर अंक संग्रहणीय, उपयोगी और व्यावहारिक प्रकाशन का पक्षधर है ।
 - ❖ “ज्योतिष चन्द्रिका” का वार्षिक शुल्क भेजकर आप भी इसके परिवारिक सदस्य बनिये ।
 - ❖ सदस्यता शुल्क

आजीवन	—	११००/- रुपये
वार्षिक	—	७०/- रुपये
अर्द्ध वार्षिक	—	३५/- रुपये
- (कृपया सदस्यता शुल्क मनीआर्डर अथवा ड्राफ्ट के साथ भेजें, नीचे प्रकाशित कूपन के साथ ।)

सदस्यता फार्म

नाम

आजीवन/वार्षिक/अर्द्ध वार्षिक

पूरा पता

.....

पत्र व्यवहार का पता
 “ज्योतिष चन्द्रिका”
 ५२३, दक्षिणी सिविल लाईन्स
 मुजफ्फरनगर-२५१००२
 पो० बा० नं ४७

शाखा :
 २४-ए, पाकेट-ए
 मयूर विहार फेस-२
 देहली ११००६१

14 ~~14~~

Regn. No. 47795/88

Post Regn. No. MZN/L-13/N.P.-8/88



CHEMCO

Authorised Stockists of

**E. MERCK, BDH, QUALIGENS GLAXO, LOBA, HI-MEDIA
RANBAXY LAB., CHEMICALS & REAGENTS,
SIGMA, FLUKA AND RARE CHEMICALS**

**1496/26, NAIWALA STREET, KAROL BAGH
NEW DELHI - 110005**

TEL. 5724289, 5710448

स्वत्वाधिकारी, प्रकाशक, मुद्रक एवं सम्पादक पं० राजभारद्वाज द्वारा सृजन प्रेस, निकट नेहरू नव
चिकित्सालय, मुजफ्फरनगर से मुद्रित एवं ५२३; दक्षिणी सिविल लाईन, पोस्ट बॉक्स नं० ४७; शहर
मुजफ्फरनगर से प्रकाशित ।